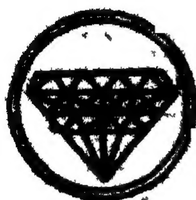


D—1429

महारानी लक्ष्मीबाई एक सामान्य ब्राह्मण कुल में पैदा होकर महारानी बनीं, इसे सौभाग्य ही कहा जा सकता है परन्तु भारतीय स्वतन्त्रता-संग्राम में उन्होंने जिस अभूतपूर्व धैर्य, साहस और वीरता का प्रमाण प्रस्तुत कर शत्रु-सेना के दांत-खट्टे कर दिये, यह उनकी निजी सूझ-बूझ और वीरोचित प्रतिभा ही थी।

भारतीय स्वतन्त्रता-संग्राम में हमारे ही कुछ भाई गद्दारी कर गये अन्यथा रानी-झांसी के साहसपूर्ण पराक्रम से अंग्रेज उसी समय भारत छोड़ भागते। इसी का लिखित दस्तावेज प्रस्तुत करती है यह पुस्तक—झांसी की रानी लक्ष्मीबाई।

डा० भवानीसिंह राणा

झांसी की रानी लक्ष्मीबाई

प्रकाशक :
डायमण्ड पाकेट बुक्स (प्रा०) लि०,
(मोती महल के पीछे)
2715, दरियागज, नई दिल्ली-110002

वितरक :
पजाबी पुस्तक भण्डार
दरीबा कला, दिल्ली-110006

मूल्य दस रुपये

मुद्रक गोयल प्रिन्टर्स, दिल्ली-110032

Jhansi Ki Rani Laxmi Bai Dr Bhawan Singh Rana Rs 10 00

दो शब्द

वीरागना महारानी लक्ष्मीबाई भारतीय इतिहास की एक गौरव-मयी विभूति, एक प्रेरक अध्याय हैं। उनका नाम आज भी अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध सघर्ष करने वालो के हृदयो मे एक नवीन उत्साह का सञ्चार कर देता है। उनका जीवन आरोह-अवरोह का एक विचित्र समन्वय रहा है। एक सामान्य स्तर के व्यक्ति मोरोपन्त ताम्बे की सात वर्षीया अबोध पुत्री परिस्थितियोंवश झासी के प्रौढप्राय राजा गगाधर राव की महारानी लक्ष्मीबाई बन गयी। अपने जीवन के उन्नीसवे वर्ष मे ही वह विधवा हो गयी। यही से उनका संघर्षमय जीवन आरम्भ हो गया। झासी के अग्रेजी राज्य में विलय के समय वह गरज उठी—"मैं अपनी झासी नही दूगी।"

उस समय उनके ये शब्द परिस्थितिजन्य आक्रोश की अभिव्यक्ति मात्र थे अथवा किसी निश्चित सकल्प के सूचक, इस विषय मे निश्चित रूप से कुछ नही कहा जा सकता, किन्तु इसके चौथे ही वर्ष उन्हें अपनी झासी की रक्षा के लिए तलवार उठानी पडी। यहा से वह एक वीरागना के रूप मे सामने आती हैं। पहले झासी, फिर कालपी और अन्त मे ग्वालियर मे अग्रेजो के विरुद्ध युद्ध उनके जीवन रूपी महाकाव्य के सर्ग बने।

प्राय बाईस वर्ष की अवस्था मे, वह भी आज से लगभग सवा सौ वर्ष पहले, भारत के पुरुष प्रधान समाज मे प्रबल पराक्रमी, सर्वसाधन सम्पन्न अग्रेजो के विरुद्ध उनका यह सघर्ष निश्चय ही एक क्रान्तिकारी कार्य था। उनमे एक श्रेष्ठ वीरागना और योग्य सेनानायक के सभी गुण विद्यमान थे, इसे उनके शत्रु अग्रेजो ने भी नि सकोच स्वीकार किया, किन्तु इसे एक विडम्बना ही कहा जाएगा कि सघर्ष के उनके

सहयोगियो ने उन्हे वह सम्मान नही दिया जिसकी वह अधिकारिणी थीं। झांसी के संघर्ष की असफलता के बाद वह कालपी पहुची, जहा से पेशवा राव साहब, वीर तात्या टोपे और बादा के नवाब सघर्ष मे उनके सहयोगी बने। महारानी लक्ष्मीबाई अपने इन सभी सहयोगियो से योग्य सेनानायिका थीं। इससे उनके ये सहयोगी भी अपरिचित नहीं थे, फिर भी पेशवा राव साहब पुरुष प्रधान समाज की अपनी मनोवृत्ति से मुक्त नही हो सके, महारानी को युद्धो के सचालन का कार्यभार केवल इसीलिए नही सौंपा गया कि वह एक स्त्री थी, जिसे अबला कहा जाता है। महारानी ने अपने प्रशसनीय कार्यों से यह सिद्ध कर दिखाया कि स्त्री अबला नही होती, अपितु पुरुष प्रधान समाज उसे अबला बनने के लिए बाध्य कर देता है, वही अबला समय आने पर वीरागना महारानी लक्ष्मीबाई भी बन सकती है। उनके इन्ही महनीय गुणो के कारण कुछ लेखको ने उनकी तुलना फ्रान्स की महान देशभक्त वीरागना 'जोन ऑफ आर्क' से भी की है।

लघु आकार की इस पुस्तक मे महारानी लक्ष्मीबाई के जीवन-चरित्र की अधिकतम सामग्री को सक्षिप्त रूप मे देने का प्रयास किया गया है। आशा है, हिन्दी के पाठक इससे अवश्य लाभान्वित होगे, यही इस पुस्तक के लेखन का उद्देश्य है।

इस पुस्तक को लिखने मे महारानी के जीवन से सम्बद्ध श्री दत्तात्रेय बलवन्त पारसनीस, श्री कृष्ण रमाकान्त गोखले और श्री शान्ति नारायण की पुस्तको के साथ ही श्री विनायक दामोदर सावरकर की कृति '1857 का स्वतन्त्रता युद्ध' और महाराष्ट्र, बुन्देलखण्ड एव बादा के इतिहास की पुस्तको से सहायता ली गयी है। इन सभी पुस्तको के लेखको के प्रति मैं अपना विनम्र आभार प्रकट करता हू।

—डॉ० भवानसिह राणा

विषय सूची

अध्याय : 1

प्रारम्भिक जीवन

शताब्दियो की दासता के परिणामस्वरूप भारतीय समाज मे नारी को अबला कहा जाने लगा था। उसका स्थान अन्त पुर अथवा घर की चारदीवारी तक सीमित रह गया था। इस कुण्ठा के और दृढ होने पर घर मे कन्या का जन्म होना ही अशुभ समझा जाने लगा, जन्म लेते ही नृशस लोग उसकी हत्या कर देते, सासारिकता मे सर्वथा अनभिज्ञ बालिकाओ का विवाह कर दिया जाता। यदि इन अबोध बालिकाओ के पति की मृत्यु हो जाती, तो उसे या तो सती होने के लिए बाध्य किया जाता अथवा जीवन-भर विधवा का अभिशप्त जीवन जीना पडता। मध्ययुगीन इतिहास जहा अनेक वीर पुरुषो के वीरतापूर्ण कार्यों से भरा पडा है, वहा स्त्री जाति के इस प्रकार के वीरतापूर्ण कार्यकलापो का उसमे प्राय अभाव ही है, वहा सर्वत्र नारी को मानसिक रूप से दास बना देने की ही प्रवृत्ति दिखाई देती है। उसके पति का अस्तित्व ही उसका अपना अस्तित्व माना जाने लगा। मेवाड का अथवा राजपूताने का अन्य राज्यो के इतिहास मे जौहर व्रता की मुक्त कण्ठ से प्रशसा की गई है। ऐसा लगता है उस काल मे भारतीय नारी इतनी निर्बल हो गई थी कि वह शत्रु के समक्ष शस्त्र उठाने की कल्पना भी नही कर सकती थी। वह शत्रु का सामना करने की अपेक्षा अग्नि मे जल मरना गौरवपूर्ण समझती थी।

इसे एक सुखद आश्चर्य ही कहा जाएगा कि महारानी लक्ष्मीबाई ने भारतीय नारियो की इस दासतापूर्ण मानसिकता को ध्वस्त कर दिखाया। उन्होने यह आश्चर्यजनक कार्य ऐसे समय मे किया, जब समग्र भारतीय नरेश अपनी आभा खो चुके थे या यो कहा जा सकता है

कि वे सभी ब्रिटिश साम्राज्य के सूर्य की आभा के समक्ष तेजहीन हो चुके थे। महारानी लक्ष्मीबाई ने नारी के अबला होने की उस मिथ्या धारणा को निराधार कर दिखाया, जो शताब्दियो से भारतीय जनमानस मे अपनी गहरी जडे जमा चुकी थी। उन्होने सिद्ध कर दिया कि भारतीय नारी अबला नही है, उसे मानसिक रूप से अबला बना दिया गया है। समय आने पर वह सबला ही नही, अपितु परम वीरागना भी बन सकती है। उन्होने चिरकाल तक दासता की निद्रा मे सोई हुई भारतीय नारी को उनकी निद्रा से जगाया और इतिहास मे एक सर्वथा नवीन गरिमामय अध्याय की सर्जना की। नि सन्देह महारानी लक्ष्मीबाई नारी जाति का ही गौरव नही एक प्रात स्मरणीय ऐतिहासिक विभूति है।

वंश-परिचय

सतारा (महाराष्ट्र) के पास कृष्णा नदी बहती है। इसी कृष्णा नदी के तट पर वाई नामक एक गाव है। मराठा साम्राज्य के सस्थापक छत्रपति शिवाजी महाराज के उत्तराधिकारी अयोग्य सिद्ध हुए और साम्राज्य पर पेशवाओ का अधिकार हो गया। पेशवाओ के शासनकाल मे इसी वाई गाव के कृष्णराव ताम्बे नामक एक ब्राह्मण किसी उच्च राजकीय पद पर नियुक्त थे। उनका बलवन्त नाम का एक पुत्र था, जो अत्यन्त वीर तथा पराक्रमी था। फलत उसकी वीरता से प्रसन्न होकर पेशवा द्वारा उसे सेना मे एक सम्मानित पद प्राप्त हुआ था। इस प्रकार पिता-पुत्र दोनो पर पेशवाओ की कृपादृष्टि रही तथा दोनो को उच्च पद प्राप्त हुए। स्पष्ट है कि दोनो ने अपने-अपने पदो पर पूर्ण योग्यता से कार्य किया, अन्यथा इस कृपा का परम्परागत रूप मे बना रहना सभव न होता।

बलवन्त के दो पुत्र हुए—मोरोपन्त तथा सदाशिव, ऊपर कहा जा चुका है कि इस परिवार पर पेशवाओ की कृपादृष्टि दो पीढियो से बनी आ रही थी। तीसरी पीढी मे भी यह परम्परा अक्षुण्ण रही। पेशवा बाजीराव द्वितीय के भाई चिमाजी आपा साहब तथा मोरोपन्त मे अन्त-

रग मित्रता थी । सन् 1818 मे जब पेशवा बाजीराव ने अग्रेजो से आठ लाख वार्षिक की पेंशन लेकर पद से त्यागपत्र दे दिया, तो अग्रेजो ने चिमाजी आपा साहब के सम्मुख प्रस्ताव रखा कि वह पेशवा का पद स्वीकार कर ले, किन्तु उन्होने इसे अस्वीकार कर दिया, क्योकि अग्रेजो के अधीन अधिकारविहीन पेशवाई को वह अर्थहीन समझते थे । उसके बाद वह बनारस चले आए और वही रहने लगे । उनके बनारस आ जाने पर मोरोपन्त ताम्बे भी बनारस आ गए । वह चिमाजी आपा साहब के सचिव का कार्य करते थे, जिसके लिए उन्हे पचास रुपये प्रति माह वेतन मिलता था ।

महारानी लक्ष्मीबाई के माता-पिता

वही मोरोपन्त ताम्बे वह व्यक्ति है, जिन्हे वीरागना महारानी लक्ष्मीबाई के पिता बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ । इनकी पत्नी का नाम भागीरथीबाई था, जो अत्यन्त रूपवती, पतिपरायणा, सुशीला तथा व्यवहारकुशल महिला थी । दोनो पति-पत्नी मे परस्पर प्रगाढ प्रेम था । उनके इस प्रेम के विषय मे श्री पारसनीस दत्तात्रेय बलवन्त अपनी पुस्तक 'झासी की रानी लक्ष्मीबाई' मे लिखते है—

"पति और पत्नी मे सदैव बडा प्रेम रहता था । ससार में प्रेम से बढकर और कोई पवित्र वस्तु नही है, यदि वह प्रेम सच्चे और शुद्ध हृदय से किया गया हो । यदि दो मनुष्य प्रेमबद्ध होकर किसी दुस्तर से दुस्तर कार्य को करना चाहे तो वह सरलतापूर्वक किया जा सकता है। किसी कवि ने ठीक ही कहा है कि यदि दो दिल मिलकर चाहे, तो पहाड भी तोड सकते है । फिर यदि पति और पत्नी मे परस्पर सच्चा प्रेम हो तो यह बताने की आवश्यकता नही जान पडती कि ससारयात्रा किस प्रकार उत्तम रीति से निर्वाह हो सकती है । ऐसा ही सच्चा प्रेम मोरोपन्त और उनकी पत्नी मे था ।"

जन्म एव बाल्यकाल

मोरोपन्त की पत्नी भागीरथीबाई ने कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी सवत्

1891 अर्थात् 16 नवम्बर, सन् 1835 ई० के दिन एक कन्या को जन्म दिया। यही कन्या आगे चलकर इतिहास मे महारानी लक्ष्मीबाई के नाम से प्रसिद्ध हुई। कन्या के जन्म पर मोरोपन्त और उनकी पत्नी भागीरथीबाई को अपार हर्ष हुआ। उनके सभी सम्बन्धियो तथा परिचितो ने उन्हे कन्यारत्न की प्राप्ति पर बाधाइया दी। नवजात शिशु को चिरायु होने का आशीर्वाद दिया तथा कामना व्यक्त की कि वह बालिका 'परम' पराक्रमशालिनी तथा यशस्विनी बने। सहजभाव से दिया गया यह आशीर्वाद कालान्तर मे सत्य ही सिद्ध हुआ। कहा जाता है, इस कन्या के जन्म पर ज्योतिषियो ने भविष्यवाणी की थी कि यह कन्या राज्य-लक्ष्मी युक्त तथा अनुपम शौर्यशालिनी होगी। उस समय नवजात अबोध बालिका के शान्त, सौम्य एव निश्च्छल मुख को देखकर कोई नही कह सकता था कि यह बालिका अपने स्वाधीनता-प्रेम तथा राज्य की रक्षा के लिए इतिहास के एक स्वर्णिम अध्याय की सर्जना करेगी। माता-पिता ने इस कन्या का नाम मनूबाई रखा तथा प्रेम से उसका पालन-पोषण करने लगे।

मोरोपन्त का बाजीराव की शरण मे जाना

बालिका मनूबाई चन्द्रमा की कलाओ के समान शनै-शनै बढने लगी। इसी बीच मोरोपन्त को एक भीषण आघात लगा। उनके परम दयालु आश्रयदाता चिमाजी आपा साहब का देहावसान हो गया। एक सच्चे सुहृद् के चल बमने पर मोरोपन्त आश्रयविहीन हो गए थे। उनके पास आजीविका निर्वाह का भी कोई साधन नही रह गया था। उनके सामने एक विकट समस्या उत्पन्न हो गई थी। उनकी कुछ भी समझ मे नही आ रहा था कि क्या करे। इस सकट की घडी मे उन्हे पूर्व पेशवा बाजीराव ने आश्रय देकर अपनी कुल-परम्परागत उदारता का परिचय दिया, जो स्वय इस समय महाराष्ट्र छोडकर उत्तरी भारत मे निर्वासित जैसा जीवन-यापन कर रहे थे। मोरोपन्त बाजीराव की इस उदारता से अभिभूत होकर उन्ही के आश्रय मे रहने लगे। उन्हे अपने पारिवारिक दायित्वो के निर्वाह मे कोई कठिनाई नही हुई।

मातृवियोग

बालिका मनूबाई अपने माता-पिता के साथ बनारस छोडकर बाजीराव के आश्रय मे आ गई थी। यहीं उनका बाल्यकाल व्यतीत हो रहा था, अभी वह केवल तीन-चार वर्ष की ही थी कि उसे दुर्भाग्य के एक क्रूर विषाद का सामना करना पडा, उनकी मा भागीरथीबाई की मृत्यु हो गई। पिता एव पुत्री दोनो के ही लिए यह एक भयकर आघात था। बालिका मनूबाई भले ही मृत्यु का अर्थ अभी भली प्रकार नही समझ सकती थी, फिर भी मा के अभाव का उसके अबोध मन पर भारी आघात पहुचा होगा, मोरोपन्त को भी जीवनसगिनी के वियोग से आघात तो भीषण लगा, किन्तु वह विचलित नही हुए। उन्होने भावना पर नियत्रण रखा और पूर्ण मनोयोग से कर्तव्य का निर्वाह करने लगे। उन्होने पुत्री मनूबाई को मा के अभाव का अनुभव नही होने दिया और स्वय उसका पालन-पोषण करने लगे। अब वही उसके पिता थे और वही मा भी। इस प्रकार नन्ही बालिका मनूबाई पिता की छत्रछाया मे पलने और बढने लगी। मोरोपन्त जहा भी जाते, उसे अपने साथ ही ले जाते। उनका उठना-बैठना प्राय पुरुषो के साथ ही होता। और मनूबाई भी उनके साथ रहती। बालिका मनूबाई बाल्यकाल से ही बडी नटखट और सुन्दर थी। वह पिता के साथ प्राय बाजीराव के पास जाती रहती। पेशवा बाजीराव का उसपर अपार स्नेह था। वह मनूबाई को छबीली नाम से पुकारते थे।

नाना साहब के साथ

पेशवा बाजीराव द्वितीय पुत्रहीन थे। अत उन्होने 7 जून 1827 को एक ढाई वर्षीय बालक गोद लिया। यही बालक आगे चलकर प्रथम भारतीय स्वतन्त्रता सग्राम का अप्रतिम महारथी नाना साहब पेशवा बना। महाराष्ट्र के माथेरन पहाडो की घाटी मे एक गाव है—वेणूग्राम। इसी वेणूग्राम मे माधवराव नारायण भट नामक एक कुलीन ब्राह्मण रहते थे। उनकी पत्नी गगाबाई से 1824 ई० के अन्त मे नाना साहब का जन्म हुआ था। नाना साहब के साथ ही बाजीराव ने एक अन्य पुत्र

रावसाहब को भी गोद लिया था ।

बालिका मनूबाई को नाना साहब और रावसाहब की अच्छी मित्र मण्डली मिल गई । तीनो बच्चे विभिन्न प्रकार के खेल खेलते रहते । तत्कालीन परम्परा के अनुसार मनूबाई को घर पर ही शिक्षा देने की भी समुचित व्यवस्था की गई । बालिका मनूबाई चचल तो थी ही, उसपर एकमात्र सन्तान और मातृविहीन भी । अत वह नाना साहब को जो कुछ करते देखती, पिता से स्वय भी वही माग बैठती । पिता मोरोपन्त पुत्री की किसी भी इच्छा को मारना नही चाहते थे । नाना साहब घोडे पर बैठकर घूमने जाते, तो मनूबाई भी उनके साथ घोडे पर बैठकर जाती । आखिर नाना साहब एक पूर्व पेशवा के पुत्र थे, जबकि मनूबाई पेशवा के आश्रित की पुत्री । भला बालिका मनूबाई इसे क्या समझ पाती, उसका तो काम केवल हठ करना भर था । कहा जाता है कि एक बार नाना साहब हाथी पर बैठकर घूमने जा रहे थे । उन्हे हाथी पर बैठा देख मनूबाई भी हाथी पर बैठने का हठ करने लगी । उसका हठ देख पेशवा बाजीराव ने नाना साहब को सकेत किया कि वह मनूबाई को भी हाथी पर बैठा लें, किन्तु नाना साहब भी तो अभी बच्चे ही थे । उन्हे मनूबाई पर अपना रौब जो गाठना था, अत वह पिता के सकेत की अनदेखी कर चलते बने । इधर मनूबाई थी कि अपना हठ छोडती ही न थी, बार-बार अपने पिता से हाथी पर बैठने की जिद किये जा रही थी । खिन्न होकर मोरोपन्त कह बैठे—"अरी, क्यो व्यर्थ हठ करती है, अपना भाग्य तो देख, तेरे भाग्य मे हाथी मे बैठना लिखा भी है ?"

पिता के शब्द सुन बालिका मनूबाई ने तपाक से उत्तर दिया, "हा-हा, लिखा है, मेरे भाग्य मे, एक छोड दस हाथियो मे बैठना लिखा है ।" बात आई-गई हो गई, किन्तु उस समय कौन कह सकता था कि इन शब्दो मे कितनी सच्चाई छिपी है ।

नाना साहब के साथ ही मनूबाई की युद्ध, शारीरिक आदि शिक्षा सम्पन्न होती रही । ब्राह्मण की पुत्री होने पर भी वह युद्धकला मे विशेष रुचि लेती थी । इसी विषय मे वीर विनायक दामोदर सावरकर

अपनी पुस्तक '1857 का स्वातंत्र्य समर' मे लिखते हैं—

"नाना साहब और छबीली को शस्त्रशाला मे असिलता घुमाने का अभ्यास करते देखने का भाग्यलाभ करने वालो मे किसकी आखें असीम आनन्द से प्रसन्न नही हुई होगी? कभी लक्ष्मी की प्रतीक्षा मे अश्वारूढ नाना खडा रहता था, तो लक्ष्मी भी कमर मे तलवार बाध वायु से बिखरे कुन्तलो को सवारती हुई अश्वारूढ होकर वहा आती थी। अपनी बैठक से उस तेज घोडे को नियन्त्रित रखने का श्रम से उसकी ·· उस समय नाना की अवस्था अठारह वर्षों की तथा लक्ष्मी की सात वर्षों का थी।"

कहने का आशय यही है कि मनूबाई को बचपन मे पुरुष-समाज मे ही उठने-बैठने का अवसर अधिक प्राप्त हुआ था। उसे शिक्षा भी प्राय पुरुषो के ही समान मिली थी। फलत उसमे पुरुषोचित गुणो का समुचित विकास हुआ। कदाचित् यही वह कारण रहा हो, जिसने अग्रेजो से टक्कर लेने वाली वीरागना महारानी लक्ष्मीबाई का निर्माण किया।

विवाह

आज भले ही यह बात हास्यास्पद लगे, किन्तु वास्तविकता यही है कि मनूबाई का विवाह केवल सात वर्ष की अवस्था मे हो गया था। इस विवाह का घटनाचक्र भी अपने आप मे कम रोचक नही है। यद्यपि आजकल नगरो मे बालिकाओ के विवाह प्राय अठारह वर्षों की अवस्था के बाद ही होते है, जो वैधानिक रूप मे भी आवश्यक है, फिर भी आए दिन बाल-विवाह के समाचार पढने और सुनने को मिल जाते है। उस समय तो प्रचलन ही बाल-विवाह का था। मनूबाई अभी एक अबोध बालिका ही थी कि सामाजिक प्रथा के अनुसार उसके पिता उसके विवाह के लिए चिन्तित होने लगे। एक तो रूढिग्रस्त भारतीय समाज, वह भी उन्नीसवी शताब्दी के पूर्वार्द्ध का समय और मोरोपन्त हुए एक मराठा ब्राह्मण। कालचक्र के कारण वह पूर्व पेशवा बाजीराव के आश्रय मे ब्रह्मावर्त मे रह रहे थे। यहा उन्हे अपने कुल के अनुरूप कोई भी योग्य वर नही दिखाई दे रहा था। फलत उनका चिन्तित होना स्वाभाविक ही था।

इसी बीच एक बार झासी राज्य के राजपुरोहित पण्डित तात्या दीक्षित पेशवा बाजीराव से मिलने आए। पण्डित तात्या दीक्षित प्रकाड ज्योतिषी थे। उनके आगमन से मोरोपन्त को बड़ी प्रसन्नता हुई। वह पण्डित दीक्षित से मिले और उनके सामने अपनी समस्या रखते हुए बोले, "महाराज! यह मेरी एकमात्र कन्या है। इसकी माता का देहावसान हो चुका है। अब मैं ही इसका पिता हू और मैं ही इसकी मा भी। यदि आपकी दृष्टि मे इसके योग्य कोई वर हो तो ध्यान रखिएगा। इसके हाथ पीले कर मैं चिन्तामुक्त हो जाना चाहता हू।"

पण्डित तात्या दीक्षित ने मनूबाई की जन्मकुण्डली देखी। ग्रहो की स्थिति पर सूक्ष्म विचार करने के बाद वह बोले, "भैया! इस कन्या की जन्मकुण्डली मे राजयोग है। इसका विवाह किसी साधारण घर मे नही होगा। आप कुछ भी चिन्ता न करें। समय का खेल देखते जाइए, इसके लिए स्वय कोई राजा आपके पास आएगा। इसके लिए मैं या आप कुछ नही कर सकते। हा, फिर भी आप पिता हैं, प्रयत्न करना आपका कर्तव्य है। मैं भी प्रयत्न करूगा। हमारे प्रयत्न केवल करने भर के लिए होगे। प्रभु की इच्छा को कोई नही जान सकता।"

ज्योतिषी की भविष्यवाणी सुनकर मोरोपन्त को अपार हर्ष हुआ। इसके बाद ज्योतिषी वापस चले गए। झासी के राजा गगाधर राव प्रौढ हो चले थे, किन्तु उनका कोई पुत्र नही था। पुत्र-प्राप्ति के लिए वह पुन विवाह करना चाहते थे। उन्होने अपनी यह इच्छा अपने सभासदो के सामने व्यक्त की। पण्डित तात्या दीक्षित ने मनूबाई के विषय मे विस्तार से बताया, तो गगाधर राव उसके साथ विवाह करने के लिए लालायित हो उठे। राज ज्योतिषी ने मनूबाई के रूप-सौन्दर्य, जन्मकुण्डली आदि के बारे मे बताया तो राजा अपनी प्रौढ अवस्था को भी भूल गए। उन्होने विचार किया, कदाचित् इसी स्त्रीरत्न से उनकी वशबेल आगे बढ जाए। अत मनूबाई और गगाधर राव का विवाह होना निश्चित हो गया।

सम्बन्ध निश्चित हो जान के कुछ ही दिनो बाद 1842 ई० मे सात वर्षीया मनूबाई का विवाह झासी के प्रौढ राजा गगाधर राव के साथ

हो गया। सात वर्षीया अबोध बाला विवाह का अर्थ भला क्या समझ सकती थी। उसके लिए तो यह केवल गुड्डे-गुड़िया का खेल भर था, भले ही विवाह संस्कार काफी धूम-धाम से सम्पन्न हो रहा था। बालिका मनूबाई जो वधू बनी हुई थी, उसकी मानसिकता का अनुमान इस घटना से अच्छी तरह लगाया जा सकता है—कहा जाता है कि जिस समय विवाह-संस्कार सम्पन्न हो रहा था, अग्नि की परिक्रमा की जानी थी, उस समय जब पुरोहित ने वर-वधू को दुपट्टे मे गाठ लगाई, तो मनूबाई पुरोहित से कह उठी, "पुरोहित जी महाराज! गाठ जरा मजबूती से बाधना।"

इसी वाक्य को सुनकर सभी उपस्थित लोग ठहाके मारकर हस पड़े, क्योंकि सहज भाव से कहे गए ये शब्द थे ही हसाने योग्य, किन्तु कौन जानता था कि भविष्य मे ये शब्द किस रूप मे फलीभूत होगे। काश, कोई इन शब्दो के भावी अर्थ को समझ पाता, समझ भी पाता तो क्या होता। केवल ग्यारह वर्ष बाद ही इन शब्दो मे निहित अर्थ क्रूरतम रूप मे सामने आ गया, गगाधर राव मनूबाई (जो अब लक्ष्मीबाई हो गई थी) यौवन मे पग रखते ही स्वर्गवासी हो गए। यह इस बेमेल विवाह का एक अति सामान्य क्रूर परिणाम था। अति सामान्य इसलिए कि इस प्रकार के बेमेल विवाहो मे ऐसा होता ही रहता था और क्रूर इस अर्थ मे कि अपने अभिभावको की मूर्खता के कारण अनेक अबलाओ को जीवन-भर क्रूरतम वैधव्य ढोना पड़ता था।

मनूबाई से लक्ष्मीबाई

मनूबाई का विवाह हो गया। अब वह मनूबाई से झासी की रानी लक्ष्मीबाई बन गई थी, गगाधर राव की महारानी लक्ष्मीबाई। पिता मोरोपन्त ताम्बे अपना कर्तव्य पूर्ण कर असीम हर्षित हुए। कहा बाजी-राव का वेतनभोगी एक सामान्य सेवक, और कहा झासी के राज-परिवार मे सम्बन्ध। उन्हे तो स्वप्न मे भी इस सम्बन्ध की आशा नही रही होगी। इस विवाह मे लक्ष्मीबाई को कोई लाभ हुआ या न हुआ, यह एक विवाद का प्रश्न हो सकता है, किन्तु अपने पितृपक्ष के लिए वह अवश्य

लक्ष्मी सिद्ध हुई। विवाह के बाद मोरोपन्त तथा उनके सम्बन्धियों को गंगाधर राव द्वारा अनेक पुरस्कार दिये गए। मोरोपन्त को तीन सौ रुपये मासिक पर झांसी के दरबार में एक उच्च पद दे दिया गया। आज से डेढ़ सौ वर्ष पूर्व तीन सौ रुपये एक बहुत बड़ी धनराशि थी। वह झांसी राज-दरबार के सर्वोच्च सभासद बन गए। उनके सम्बन्धियों को भी झांसी राज्य में महत्त्वपूर्ण पदों पर नियुक्त कर दिया गया।

मनूबाई के विवाह से लगभग तीन-चार वर्ष पूर्व ही उसकी मां का देहावसान हो गया था। पुत्री पर विमाता का साया न पड़े इसी विचार से मोरोपन्त ने अपना दूसरा विवाह भी नहीं किया था। पुत्री के लक्ष्मी-बाई बन जाने पर वह सर्वथा अकेले रह गए थे। अब वह पहले की तरह निर्धन भी नहीं रहे थे। अतः अब वह भी विवाह करने का विचार करने लगे। शीघ्र ही उन्होंने दूसरा विवाह चिमनबाई से कर लिया। हां, उन्होंने इस बात का ध्यान रखा कि उनकी द्वितीय पत्नी मनूबाई के समान बालिका न होकर एक पूर्ण युवती थी। उनकी यह पत्नी गुल-सराय के एक कुलीन ब्राह्मण वासुदेव शिवराव खानवलकर की पुत्री थी।

पुत्री के विवाह के बाद मोरोपन्त अपने नये पद और नवीन गृहस्थी का सुखोपभोग करने लगे।

अध्याय : 2

झांसी और राजा गंगाधर राव

मध्य भारत मे बुन्देलखण्ड का इतिहास अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रहा है। अंग्रेजो के काल मे बुन्देलखण्ड मे झासी सहित अनेक देशी राज्यो का अस्तित्व था। इस क्षेत्र का नाम बुन्देलखण्ड क्यो पडा, इस विषय मे निर्विवाद रूप से तो कुछ नही कहा जा सकता, किन्तु फिर भी एक कहानी अत्यन्त प्रसिद्ध है, जो इस प्रकार कही जाती है—प्राचीनकाल मे काशी मे क्षत्रियो का राज्य था। कालक्रम से एक बार वहा पञ्चम नामक एक क्षत्रिय नरेश था। उसके भाइयो ने उसके विरुद्ध षडयन्त्र कर उसे राज्यविहीन कर दिया। दुःखी होकर पञ्चम विन्ध्याचल चला गया। उसके व्यथित मन को वहा अपूर्व शान्ति प्राप्त हुई। वह विन्ध्याचलवासिनी मा दुर्गा के मन्दिर मे जाकर अपने खोये हुए राज्य को पुन प्राप्त करने के लिए तपस्या करने लगा। बहुत लम्बे समय तक तप करने के बाद भी जब उसे मा दुर्गा के दर्शन नही हुए तो वह उद्विग्न हो उठा। अत उसने आत्म-घात करने के लिए दुर्गा की मूर्ति के समक्ष अपना सिर काट दिया। उसके इस त्याग से मा दुर्गा प्रसन्न हो गयी। उन्होने उसे पुनर्जीवित कर दिया तथा वरदान मागने को कहा। पञ्चम को इसकी प्रतीक्षा थी। उसने वरदान मागा—"मा ! मुझे मेरा खोया हुआ राज्य पुन प्राप्त हो जाए।"

'तथाऽस्तु' कहकर भगवती अन्तर्धान हो गयी। कुछ ही दिनो बाद पञ्चम ने अपना खोया हुआ राज्य वापस प्राप्त कर लिया। कहा जाता है, जिस समय उसने अपना सिर काटकर भगवती को चढाया, उस समय उसके रक्त के कुछ बिन्दु भगवती की मूर्ति पर जा पडे।

अत भगवती ने उसे 'बिन्दुल' कहकर सम्बोधित किया। इसी बिन्दुल शब्द से पञ्चम के वशज कालान्तर मे बुन्देला कहे गये। और इस क्षेत्र का नाम बुन्देलखण्ड पड गया।

झासी रियासत का सक्षिप्त इतिवृत्त

राजा गगाधर राव झासी के राजा थे। उनका यह राज्य राजधानी झासी के नाम पर झासी नाम से ही प्रसिद्ध हुआ। गगाधर राव स्वय मराठा ब्राह्मण थे तब वह मध्य भारत कैसे आ पहुचे? उन्हे इस राज्य की प्राप्ति कैसे हुई? इत्यादि प्रश्नो के समाधान हेतु झासी राज्य के सक्षिप्त इतिहास का परिचय देना अप्रासगिक न होगा। यही परिचय आगे चलकर प्रस्तुत पुस्तक की चरित-नायिका के अग्रेजो के विरुद्ध सग्राम का औचित्य भी सिद्ध करेगा।

झासी के प्राचीन इतिहास के विषय मे विद्वानो को कुछ भी ज्ञात नही है। इसका कुछ वर्णन सवप्रथम 1500 ई० मे हुआ है। पहले यहा ओरछा नरेश वीरसिह देव अथवा वीरसिह का राज्य था। उनके शासन-काल मे झासी एक गाव मात्र था। उन्होने झासी मे एक दुर्ग का निर्माण कराया था, जो आज भी भग्नावस्था मे अपने अतीत की गौरव-गाथा का साक्षी है। सन् 1602 मे राजा वीरसिह देव ने अकबर के पुत्र शाहजादा सलीम (जो आगे चलकर मुगल सम्राट जहागीर के नाम से प्रसिद्ध हुआ) के कहने पर अकबर के प्रख्यात सभासद अबुलफजल को युद्ध मे मार डाला था। कूटनीति मे चतुर अकबर ने बुन्देलखण्ड पर आक्रमण कर दिया और युद्ध का सेनापति शाहजादा सलीम को ही बनाकर भेजा। मुगलो की विशाल सेना का सामना करने मे स्वय को असमर्थ देख वीरसिह देव ने शत्रु का प्रत्यक्ष सामना न करने मे ही अपना हित समझा। वह पर्वतो की शरण मे चले गये। फलत बुन्देलखण्ड पर मुगलो का अधिकार हो गया। समय ने करवट बदली। अकबर की मृत्यु के बाद सलीम जहागीर के नाम से सम्राट बन गया। उसने वीरसिह देव को क्षमा ही नही किया, अपितु 1605 ई० मे उनका राज्य भी वापस कर दिया।

1627 मे शाहजहा भारत सम्राट बना । उसके साथ वीरसिंह देव के सम्बन्ध मित्रतापूर्ण न रह सके, अत उसने बुन्देलखण्ड का राज्य वीरसिंह देव से छीनकर 1642 ई० मे मुगल साम्राज्य मे मिला लिया । इसके बाद लगभग पैंसठ वर्षो तक यहा मुगलो का ही शासन रहा । सन् 1707 मे तत्कालीन मुगल सम्राट ने झासी की जागीर छत्रसाल को दे दी । छत्रसाल एक योग्य शासक सिद्ध हुए । उनकी प्रजा उनके कार्यो से प्रसन्न होकर उनका गुणगान करने लगी । कुछ ही समय मे उन्होंने सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड पर अधिकार कर लिया । उनकी लोकप्रियता इलाहाबाद के नवाब मुहम्मद खा बगस तथा मालवा के सूबेदार को सहन नही हुई । वे जब-तब छत्रसाल के साथ वैर लेने लगे, किन्तु छत्रसाल के सामने उन्हे सदा मुह की खानी पडी ।

मराठों द्वारा छत्रसाल को युद्ध में सहायता

उक्त दोनो शत्रु छत्रसाल को किसी भी प्रकार अपने अधीन करना चाहते थे । तभी मालवा के सूबेदार ने उनके पास एक सन्देश भिजवाया जिसमे कहा गया था कि वह (छत्रसाल) उसे कर देना स्वीकार कर लें, अन्यथा उन्हे इसका भयकर परिणाम भुगतना पडेगा । स्पष्ट है कि यह सन्देश, सन्देश न होकर एक खुली धमकी थी । भला परम स्वाभिमानी वीर छत्रसाल इस कैसे स्वीकार करते । उन्होने इस सन्देश के उत्तर मे मालवा के सूबेदार को लिखा—

"मेरा यह देश देवगढ या दक्षिण के नरेश का राज्य नही है, जो कि तुम मुझे हराकर लूट ले जाओगे । मेरा राज्य वह नन्दाबाद का नगर भी नही है, जिसके बडे-बडे महलो पर तुमने अधिकार कर लिया था । न ही म कोई व्यापारी हू, जो तुम्हारी धमकियो से डर जाऊगा । न मेरा देश कोई देव-मन्दिर है, जहा तुम जूते सहित अन्दर भी चले जाते हो, तो वहा के पुजारी अपमान को चुपचाप सहन कर लेते है । मैं महाराज चम्पतराय का पुत्र हू । मै युद्ध मे तुम्हारे साथ जब चाहो दो-दो हाथ करने को तैयार हू । यदि तुमने मुझसे युद्ध किया, तो तुम्हारा मुझसे कर मागना तो दूर, उल्टे तुम्हे ही मुझे चौथ देनी पडेगी ।"

कविवर भूषण ने इस पत्र का वर्णन अपनी वीररस पूर्ण कविता में इस प्रकार किया है—

देवगढ देश नही दक्षिण नरेश नही,
　　　　　　　　　　　　चादाबाद नही जहा घने महल पाइहो।
सौदागर सान नही देवन को थान नही,
　　　　　　　　　　　　जहा तुम पाहुन लै बहु उठि धाइहो।
मै तो सुन चम्पत को युद्ध बीच लैहो हाथ,
　　　　　　　　　　　　यही जिय जानि उल्टि चौथ दे पठाइहो।
लिखा परवाना महाराज छत्रसाल जू ने,
　　　　　　　　　　　　औरन के धोखे यहा कबहू न आइहो॥

उस उत्तर को पाकर मालवा का सूबेदार आगबबूला हो उठा। इसे उसने अपना खुला अपमान समझा। उसने छत्रसाल को इसका सबक देने की ठान ली। वह अकेले उनका कुछ नही बिगाड सकता था। अत उसने इलाहाबाद के नवाब से सहायता मागी तथा मुगल सम्राट को भी सहायता के लिए सहमत कर लिया। अपनी तथा इन दोनो की विशाल सेनाए लेकर वह छत्रसाल पर चढाई करने के लिए चल पडा।

छत्रसाल समझ गए कि शत्रु की विशाल सेना का सामना करना कठिन कार्य है, अत महाराष्ट्र नरेश छत्रपति शाहू के पेशवा बाजीराव प्रथम को पत्र लिखकर उनसे सहायता मागी। उन्होने अपने इस पत्र मे लिखा— 'आपके सनातन धर्म गौ, ब्राह्मणो की रक्षा के लिए ही मैने यह युद्ध अपने ऊपर लिया है। उधर सम्राट की पूर्ण शक्ति और इधर मै अकेला, मै केवल धर्म के ही सहारे खडा हू यदि ऐसे समय न आप मेरी रक्षा नही करेंगे, तो आपके लिए भी सनातन धर्म की रक्षा करना कठिन हो जाएगा।'

कहा जाता है कि छत्रसाल ने यह पत्र एक सौ दोहो मे लिखा था, जिनमे निम्न दोहा विशेष उल्लेखनीय है—

जो गति ग्राह गजेन्द्र की सो गति भई है आज।
बाजी जात बुन्देल की राखो बाजी लाज॥

अर्थात् जो दशा ग्राह से गजेन्द्र की हो गई थी, वैसी ही दशा आज मेरी भी हो गयी है। आज बुन्देला छत्रसाल अपने जीवन की बहुत बड़ी बाजी हार जाएगा अत हे बाजीराव ! मुझे अपमानित होने से बचा लो।

पेशवा बाजीराव ने छत्रसाल को ऐसी दुख की घडी मे सहायता देना अपना पुनीत कर्त्तव्य समझा। उन्होने छत्रसाल को उत्तर देते हुए लिखा—धर्म की रक्षा के लिए हम आपकी सहायता करेंगे। आप तो स्वय वीर है, अत आप स्वय ही दिल्ली साम्राज्य को नष्ट करने मे समर्थ है। कहा जाता है कि अपने इस उत्तर मे बाजीराव ने निम्नांकित दोहा भी लिखा था—

वे होंगे छत्तापना, तुम होगे छत्रसाल।
वे दिल्ली की ढाल तो, तुम दिल्ली ढाहन वाल॥

अर्थात् वे तुम्हारे शत्रु यदि छत्तापना (छत डालने वाले) है, तो तुम छत्रसाल (छत को नष्ट करने वाले) हो। यदि वे दिल्ली की ढाल (सुरक्षा करने वाले) है तो तुम दिल्ली के अस्तित्व को मिटा देने वाले हो।

पेशवा बाजीराव अपनी भारी सेना लेकर छत्रपति साहू की आज्ञा से बुन्देलखण्ड की ओर चल पडे तथा लगभग 21-22 दिनो मे बुन्देलखण्ड पहुच गये छत्रसाल और मराठा सेना का मुगलो की साठ हजार सेना के साथ भयकर युद्ध हुआ, जिसमे शत्रु सेना की एक न चली। शत्रु समझ गये कि प्रतिस्पर्धा मे और अधिक युद्ध करने का अर्थ अपना सर्वनाश करना है अत उन्होंने सन्धि करने मे ही अपना हित समझा। इस प्रकार मराठो की सहायता से छत्रसाल शत्रु का मानमर्दन करने मे समर्थ हुए। शत्रुओं ने उनसे सन्धि कर ली।

इस सन्धि के बाद महाराज छत्रसाल ने पेशवा बाजीराव से पन्ना मे भेट की। पन्ना उस समय बुन्देलखण्ड की राजधानी थी। छत्रसाल ने वहा बाजीराव प्रथम का राज्योचित सम्मान किया तथा उनके इस उपकार के प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त की। इसके बाद पेशवा वापस महाराष्ट्र लौट गये। यही से मराठो के बुन्देलखण्ड मे नये सम्बन्धो का

सूत्रपात होता है। यद्यपि पेशवा बाजीराव ने छत्रसाल की सहायता निरपेक्ष भाव से की थी, फिर भी इस कृपा से छत्रसाल बाजीराव से अभिभूत हो गये थे।

पेशवा बाजीराव को बुन्देलखण्ड मे राज्य-प्राप्ति

इस युद्ध के समय छत्रसाल प्राय वृद्ध हो चले थे। बाजीराव प्रथम को इस सदाशयता के कारण वह अपने पुत्र के समान मानने लगे। अत अपनी मृत्यु के समय उन्होने अपने राज्य को तीन भागो मे विभक्त कर दिया था, जिसमे मे दो भाग अपने दोनो पुत्रो को तथा तृतीय भाग बाजीराव प्रथम को दे दिया। यही से मध्य भारत मे मराठा ब्राह्मणो के राजवश की नीव पडती है।

पेशवा बाजीराव को मिले इस राज्य की तत्कालीन वार्षिक आय एक करोड रुपये थी। मराठो की सत्ता का केन्द्र महाराष्ट्र होने से बुन्देलखण्ड के इस राज्य को बाजीराव ने अपने सीधे नियन्त्रण मे नही रखा, अपितु इसके निम्नलिखित तीन भाग कर दिये।

सागर, गुंलसराय और जालौन की जागीर

सागर, गुलसराय, जालौन आदि क्षेत्र, जिसकी वार्षिक आय उस समय चालीस लाख रुपये थी, गोविन्द पन्त बुन्देल को दे दिया गया जो मराठा ब्राह्मण होते हुए भी बुन्देलखण्ड का राज्यपाल (सूबेदार) बनाये जाने के कारण बुन्देल कहा गया। पानीपत के तीसरे युद्ध मे गोविन्द पन्त बुन्देल नजीब खा रुहेला से युद्ध करता हुआ वीरगति को प्राप्त हुआ। बाद मे उसके पुत्रो ने कालपी मे अपने राज्य की स्थापना की और काफी पीछे तक उनके वशज इस भूभाग पर राज्य करते रहे। इसके पश्चात् इस राज्य का अग्रेजी राज्य मे मिला लिये जाने पर गोविन्द पन्त बुन्देल के वशजो को तीन लाख की जागीर दे दी गयी। उनके वशज आज भी गुलसराय (झासी) मे रहते है।

कालपी और बांदा की जागीर

पेशवा बाजीराव प्रथम की एक मुसलमान नर्तकी रखैल थी, जिसका नाम मस्तानी था। मस्तानी से प्रेम-प्रसग के कारण उन्हे विवाद का विषय बनना पड़ा था। बाजीराव उसे अपनी रानी ही समझते थे। यद्यपि मराठा सरदार मस्तानी को पूर्ण सम्मान देते थे, फिर भी उनकी दृष्टि मे वह बाजीराव की एक रखैल भर थी। यह समस्त प्रेम-कथा मराठा इतिहास का एक पृथक अध्याय है। मस्तानी से पेशवा बाजीराव का एक पुत्र भी उत्पन्न हुआ, जिसका नाम समशेर बहादुर था। उसकी शिक्षा-दीक्षा पेशवा के अन्य पुत्रों के समान ही हुई। पेशवा की सभा मे उसे वही सम्मान प्राप्त था, जो पेशवा के अन्य पुत्रों को।

छत्रसाल से प्राप्त हुए इस राज्य का एक भाग, जिसमे कालपी और बांदा के क्षेत्र आते थे, पेशवा ने समशेर बहादुर को दे दिया। इस क्षेत्र की तत्कालीन वार्षिक आय चालीस लाख रुपये थी। सन् 1816 ई० तक इस क्षेत्र पर समशेर बहादुर के ही वशजो का अधिकार रहा। इसके बाद 1817 ई० मे इस क्षेत्र को अंग्रेजो ने अपने राज्य मे मिला लिया तथा राज्य के स्वामी को चार लाख रुपये वार्षिक की पेंशन नियत कर दी। समशेर बहादुर के वंशज आज भी मध्यप्रदेश मे इन्दौर आदि स्थानो पर रहते है।

झांसी की जागीर

उपर्युक्त 80 लाख के क्षेत्र के बाद बीस लाख आय का झांसी का क्षेत्र शेष रह गया। पेशवाओ के अभिलेखो से स्पष्ट नही होता कि सर्वप्रथम झांसी का मराठा राज्यपाल किसे बनाया गया। सम्भवत पहले गगाधर पन्त को ही इस पद पर नियुक्त किया गया। एक बार उसका प्रतिनिधि मल्हार कृष्ण राज्य मे कर लेने गया था, तो ओरछा के बुन्देलो ने उसे उसके दो पुत्रो सहित धोखे से मार डाला। इस पर क्रुद्ध होकर पेशवा ने ओरछा पर चढाई कर दी। वहा का राजा बन्दी बना लिया गया, राजमहल भूमिसात कर दिये गये तथा

राजधानी मे गधों से हल फिरवा दिया गया।

इसके बाद झासी का सूबेदार गोविन्दराव पन्त को बनाया गया। सन् 1742 मे इस पद पर नारोशंकर मोतीवाले की नियुक्ति हुई। वह इस पद पर लगभग चौदह वर्षो तक रहा। बाद मे उसने पेशवा के पास राज्य की आय का निश्चित भाग भेजना भी बन्द कर दिया अत 1757 मे उसे वापस बुला लिया गया। उसने पेशवा को न जाने क्या प्रभावित किया कि उसे एक उच्च पद दे दिया गया। वह सदा मूल्यवान मोतियो का हार पहनता था, अत उसे मोतीवाले की उपाधि दी गयी। उसके कार्यकाल मे सन् 1756 ई० मे झासी मे गुसाइयो ने विद्रोह कर दिया तथा उसे अपने अधिकार मे कर लिया। स्मरणीय है कि ये गुसाई पहले झासी के स्वामी रह चुके थे। कदाचित इसी विद्रोह के कारण नारोशंकर मोतीवाले को वापस बुला लिया गया था।

झासी मे गुसाइयो के विद्रोह का दमन करने के लिए पेशवा ने एक वीर पुरुष रघुनाथ हरि नेवालकर को सूबेदार बनाकर झासी भेजा। रघुनाथ हरि नेवालकर ने इस विद्रोह को कुचल डाला। उसकी इस सफलता मे प्रसन्न होकर पेशवा ने उसे झासी के सूबेदारी के साथ ही दस हजार वार्षिक की एक जागीर भी वंश-परम्परागत रूप मे सदा के लिए दे दी। इन गुसाइयो के बुन्देलखण्ड मे आनन्त, आमात, आख्यात और नागा नाम के चार मठ थे। ये मठ युद्ध मे उनकी सहायता करते थे। रघुनाथ हरि ने इस व्यवस्था को समाप्त कर इन्हे झासी राज्य मे मिला लिया।

गंगाधर राव के पूर्वज

यही रघुनाथ हरि नेवालकर राजा गंगाधर राव के पूर्वज थे, जिन्हे सर्वप्रथम झासी का राज्यपाल बनाया गया। उनके पूर्व पुरुष पहले महाराष्ट्र के रत्नगिरि जिले के पावस नामक गाव मे रहते थे। उनमे कुछ व्यक्ति पेशवाओ का शासन आरम्भ होने पर खानदेश चले गए थे, जो बाद मे पेशवा तथा होल्कर की सेनाओ मे महत्त्वपूर्ण पदो पर रहे।

बुन्देलखण्ड मे मराठो का अस्तित्व सुदृढ करने मे रघुनाथ हरि नेवालकर की सहायता उनके दो छोटे भाइयो लक्ष्मणराव और शिवराव भाऊ ने भी की थी। वृद्ध हो जाने पर रघुनाथ हरि नेवालकर ने झासी की सूबेदारी शिवराव भाऊ को सौंप दी और स्वय वाराणसी चले गए। वही सन् 1796 मे उनका देहान्त हुआ।

शिवराव भाऊ और अग्रेजो की सन्धि

जिस समय शिवराव भाऊ झासी के राज्यपाल बने, उस समय बाजीराव द्वितीय पेशवा थे, जो एक अयोग्य शासक सिद्ध हुए। उनके शासन मे राज्यो मे अव्यवस्था फैल गई। मराठा सरदार स्वतत्र होने के लिए विद्रोह करने लगे। अग्रेजो ने इसे उचित अवसर देख उनके राज्य मे हस्तक्षेप किया जिसके परिणामस्वरूप बाद मे पेशवा को अपना पद छोडना पडा। इसका उल्लेख पहले ही किया जा चुका है। इसे देख शिवराव भाऊ का आशकित होना स्वाभाविक था। अत उन्होने भी पेशवाओ से सम्बन्ध-विच्छेद कर बुन्देलखण्ड के सभी शासको को अपने पक्ष मे कर लिया जिससे उनकी शक्ति काफी बढ गई। इसके साथ ही एक कुशल राजनीतिज्ञ की तरह उन्होने समय को पहचानते हुए 6 फरवरी, 1804 को ब्रिटिश शासन के साथ एक सन्धि कर ली। इस सन्धि मे स्पष्ट लिखा है "शिवराव भाऊ और अग्रेजी सरकार परस्पर मित्र है। किसी भी प्रकार के सकट के समय उन्हे एक-दूसरे की सहायता करनी चाहिए।

इस सन्धि के बाद बुन्देलखण्ड के अन्य नरेशो ने भी अग्रेजो सरकार से मित्रतापूर्ण सन्धियाँ की जिनसे इस क्षेत्र मे ब्रिटिश राज्य के सुदृढ होने मे बडी सहायता मिली।

माता-पुत्र की शत्रुता

शिवराव भाऊ के तीन पुत्र थे—कृष्णराव, रघुनाथ राव तथा गगाधर राव। ज्येष्ठ पुत्र कृष्णराव की मृत्यु शिवराव भाऊ के जीवन-काल मे ही हो गई थी जिससे उन्हे अत्यन्त दुख हुआ और राज्य से

विरक्ति हो गई, अत वह सब कुछ छोड़-छाडकर ब्रह्मावर्त चले गए। तब कृष्णराव के अल्पवयस्क पुत्र रामचन्द्र राव को झासी का शासक बनाया गया और उसकी मा सखूबाई उसके नाम पर शासन का सचालन करने लगी। इस कार्य मे झासी का पूर्व मत्री गोपाल राव उसको सहायता करता था।

धीरे-धीरे रामचन्द्र राव बडा हुआ, तो उसने राज्य का शासन-भार अपने नियत्रण मे लेना चाहा। सखूबाई इतने समय तक शासन का सुख भोग चुकी थी, अत उसे पुत्र की यह भूमिका पसन्द न आई। कहा जाता है कि 'पुत्र भले ही कुपुत्र हो जाए, किन्तु माता कुमाता नही होती,' परन्तु सखूबाई के सन्दर्भ मे यह कथन सर्वथा असत्य सिद्ध हुआ। वह अपने पुत्र के प्रत्येक कार्य मे बाधाए उत्पन्न करने लगी। रामचन्द्र राव ने उसके कार्यो का विरोध किया। सखूबाई समझ गई कि देर-सबेर उसे शासन-सत्ता पुत्र को सौपनी ही पडेगी, अत उसने एक क्रूर निर्णय ले लिया कि रामचन्द्र राव को सदा के लिए रास्ते से हटा दिया जाए। अपने पुत्र की हत्या के प्रयत्न प्रारम्भ कर दिये। रामचन्द्र राव को तालाब मे तैरने का बडा शौक था। वह घण्टो झासी के लक्ष्मीबाई ताल मे तैरता था। सखूबाई ने उस तालाब मे रात्रि मे गुप्त रूप मे उल्टे भाले गाडवा दिये, ताकि उसमे कूदते ही रामचन्द्र राव का प्राणान्त हो जाए।

सखूबाई की इस क्रूरतम योजना का पता रामचन्द्र राव के एक परम विश्वासपात्र सेवक लालू कोदलकर को लग गया। उसने अपने स्वामी को सारी बात बता दी। परिणामस्वरूप रामचन्द्र राव तो बच गया, किन्तु लालू कोदलकर को सखूबाई के प्रतिशोधस्वरूप अपने प्राणो से हाथ धोने पडे। सब-कुछ जानते हुए भी मा के परिवाद के रूप मे रामचन्द्र राव को मौन रहना पडा, किन्तु सखूबाई का यह दुष्कृत्य अधिक दिन तक छिपा न रह सका। कुछ ही दिनो मे सभी मत्रियो तथा प्रजा को इस विषय मे ज्ञात हुआ, तो सारे राज्य मे सखूबाई के विरुद्ध आक्रोश व्याप्त हो गया। प्रजा उसके विरुद्ध विद्रोह पर उतर आई, अत उसे बन्दी बना लिया गया। बाद मे कारावास मे ही उसकी मृत्यु हुई।

लगभग इसी समय अंग्रेजो ने पेशवा बाजीराव द्वितीय को अपदस्थ कर दिया और 13 जून 1817 को अंग्रेजो ने पेशवा से बुन्देलखण्ड के सभी अधिकार अपने हाथो मे ले लिये।

रामचन्द्र राव से अंग्रेजों की नयी सन्धि

अब अंग्रेजो को बुन्देलखण्ड मे नवीन अधिकार प्राप्त हो गए थे। इस समय झांसी मे रामचन्द्र राव का शासन था, जो अपने मंत्री गोपाल राव की सहायता से राज-कार्य चलाता था। अपने नये अधिकारो की स्थापना के लिए अंग्रेजो ने रामचन्द्र राव के साथ एक नयी सन्धि की। इस सन्धि के अनुसार शिवराव भाऊ की पिछली सेवाओ के उपलक्ष्य मे अंग्रेजो ने झांसी का राज्य वंश-परम्परा के लिए इनके (शिवराव भाऊ के) पौत्र रामचन्द्र को दे दिया। यह महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक सन्धि 17 नवम्बर 1817 को सीपरी मे सम्पन्न हुई, जिस पर रामचन्द्र राव की ओर से मन्त्री गोपाल राव तथा अंग्रेजो की ओर से जानबाहु चप ने हस्ताक्षर किये।

इसके बाद रामचन्द्र राव के अंग्रेजो से मित्रतापूर्ण सम्बन्ध रहे। सन 1825 के आसपास नानापन्त नामक एक मराठा वीर ने अंग्रेजो के विरुद्ध विद्रोह कर उनके कई स्थानो पर अधिकार कर लिया। उसकी सहायता मे अंग्रेजो ने नानापन्त को पराजित कर दिया। रामचन्द्र राव की इस सहायता के प्रति आभार व्यक्त करते हुए तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड विलियम बैंटिग ने लिखा है—"यदि झांसी की सेना हमारी सहायता के लिए समय पर न पहुचती तो कालपी मे हमारा जीतना असम्भव था।"

सन 1832 मे विलियम बैंटिग ने रामचन्द्र राव के सम्मान मे झांसी मे एक दरबार का आयोजन किया, जिसमे रामचन्द्र राव को 'महाराजाधिराज' तथा 'फिदवी बादशाह जान-जाने इंग्लिस्तान' की सम्मानजनक उपाधिया दी गयी। दुर्भाग्य से रामचन्द्र राव अधिक दिनो तक राजसुख का उपभोग नही कर सका, 1835 मे उसकी मृत्यु हो गई।

गंगाधर राव का राज्यारोहण

रामचन्द्र राव की अपनी कोई सन्तान न थी। उसने कृष्णराव नामक युवक को गोद लिया था। शिवराव को गोद लेना शास्त्रों के अनुकूल नहीं माना गया। अत रामचन्द्र राव के बाद इसके बड़े चाचा रघुनाथ राव राज्य के उत्तराधिकारी माने गए, जिसे झाँसी के तत्कालीन पोलिटिकल एजेण्ट बैगवी ने राजसिंहासन पर बैठाया। रघुनाथ राव एक अयोग्य, अत्याचारी और दुर्व्यसनी राजा निकला उसके समय में प्रजा बहुत दुखी हो गई तथा राज्य की आय भी घट गई। फलत 1837 ई० मे अंग्रेजो ने उसे पदच्युत कर अस्थायी रूप मे झाँसी का शासन अपने हाथों में ले लिया। इसके दूसरे ही वर्ष रघुनाथ राव की मृत्यु भी हो गई।

रघुनाथ राव की मृत्यु पर फिर यह प्रश्न उठ खड़ा हुआ कि झाँसी राजसिंहासन पर किसे बैठाया जाए क्योकि उसका कोई वैध पुत्र नहीं था। उत्तराधिकारी के चयन के लिए चार नाम सामने आए — रघुनाथ राव के छोटे भाई गंगाधर राव, रामचन्द्र राव का दत्तक पुत्र कृष्णराव, रघुनाथ राव की रखैल बादी गजरा का पुत्र अलीबहादुर तथा रघुनाथ राव की महारानी। इन सभी नामों पर विचार करने के लिए एक आयोग का गठन किया गया, जिसकी अध्यक्षता ग्वालियर राज्य के रेजीडेण्ट स्पीयर्स ने की। सभी नामो तथा उनके दावों पर विचार करने के बाद आयोग ने गंगाधर राव को सभी प्रकार से उसके योग्य पाया। अत उनके नाम की संस्तुति अंग्रेज सरकार द्वारा भी मिल गई। इस प्रकार गंगाधर राव झाँसी के शासक बन गए, किन्तु अभी उन्हें सम्पूर्ण अधिकार नहीं मिले थे, क्योंकि रघुनाथ राव के दुष्प्रबन्ध के कारण झाँसी राज्य पर कई लाख रुपयो का ऋण चढ़ गया था, अत अंग्रेज सरकार ने इस ऋण के चुक जाने के बाद ही पूर्ण अधिकार देने का प्रतिबन्ध रखा था।

पूर्ण राज्याधिकार-प्राप्ति

राजा गंगाधर राव एक कुशल शासक थे। उनके प्रयत्नो से झाँसी की

आर्थिक स्थिति में धीरे-धीरे सुधार आने लगा। इधर लक्ष्मीबाई से विवाह हो जाने के कुछ ही वर्षों में राज्य पर चढ़ा हुआ सभी ऋण भी चुका दिया गया। इस प्रकार लक्ष्मीबाई अपने पति के लिए लक्ष्मी-स्वरूप सिद्ध हुई। समस्त ऋण चुक जाने पर उन्हें राज्य के सभी अधिकार प्राप्त होने का समय आ गया था। इसकी सूचना बुन्देलखण्ड के राजनीतिक अभिकर्ता (पॉलिटिकल एजेन्ट) कर्नल स्लीमन अंग्रेज सरकार के पास भेज दी। सरकार ने उन्हें पूर्ण अधिकार देना स्वीकार कर लिया किन्तु इसके साथ ही एक शर्त भी रख दी कि बुन्देलखण्ड में अंग्रेजों के हितों की रक्षा के लिए उन्हें झांसी में एक अंग्रेज सेना रखनी होगी। जिसका व्यय उन्हें स्वयं वहन करना होगा। विवश होकर गंगाधर राव को यह शर्त स्वीकार करनी पड़ी। इसके लिए उन्होंने 2,27,458 रु० अलग से रख दिये। इसके साथ ही उन्होंने दो पल्टनें तथा दो तोपखाने अपने अधीन भी रखे।

इन सब बातों के स्वीकार हो जाने पर गंगाधर राव ने अपना राज्याधिकार-प्राप्ति उत्सव मनाया। इस अवसर पर राजनीतिक अभिकर्ता ने झांसी राज्य के कोष में बचे हुए तीस लाख रुपये भी उन्हें सौंप दिये तथा उन्हें बहुमूल्य खिलअत भेंट की। राज्य के प्रतिष्ठित नागरिकों, सामन्तों, जागीरदारों आदि ने भी महाराज गंगाधर राव को बहुमूल्य भेंट समर्पित की।

राजा गंगाधर राव का शासन-प्रबन्ध

झांसी में सुव्यवस्था स्थापित करने के लिए गंगाधर राव ने अनेक महत्त्वपूर्ण काम किये। सर्वप्रथम उन्होंने शासन-कार्य में परामर्श देने के लिए कुछ योग्य और अनुभवी मन्त्रियों की नियुक्ति की। राघव रामचन्द्र सप्रे नामक एक अत्यन्त बुद्धिमान और योग्य व्यक्ति को उन्होंने अपना प्रधानमन्त्री बनाया। उसी के परामर्श पर नरसिंह राव को राजदरबार में विधि परामर्शदाता बनाया गया। न्यायाधीश के पद पर नाना भोपटकर की नियुक्ति की गयी।

रघुनाथ राव के शासनकाल में राज्य को भारी हानि उठानी पड़ी

थी, अत इसके लिए गगाधर राव ने अनेक महत्त्वपूण कार्य किये। जिन स्थानो पर बुन्देले आतक मचाते थे, वहा राजकीय सेना की चौकिया बना दी गयी। अल्प ही समय मे झासी फिर से फूलने-फलने लगी। महाराज गगाधर राव को हाथी-घोडो का बहुत शौक था। उनके पास अनेक हाथी-घोडे थे, जिनमे सिद्धबक्स नाम का एक बहुत ही श्रेष्ठ हाथी था, जिसे वह निजी सवारी के लिए काम मे लाते थे। उसे पहनाये जाने वाले आभूषण तथा उसका हौदा, अम्बारी आदि सभी सामान सोने का बनाया हुआ था।

झासी राज्य तथा उसके अधीनस्थ जागीरदारो की कुल सेना पाच हजार थी। महाराज गगाधर राव का स्वभाव अत्यन्त विनम्र एव मधुर था, किन्तु शासन कार्य मे वह बडे कठोर थे। जिस व्यक्ति को जो कार्य दिया गया है, वह यथासमय अवश्य पूर्ण हो जाना चाहिए यह उनके शासन का सामान्य नियम था। इसमे विलम्ब होने पर सम्बन्धित व्यक्ति को महाराज के सामने उपस्थित होना पडता था। उनके इन्ही राजोचित गुणो के कारण तत्कालीन अग्रेज अधिकारी उनसे बडे प्रभावित थे तथा उनका सम्मान करते थे।

इच्छा-पूर्ति

परिस्थितियो ने एक सामान्य ब्राह्मण पुत्री को झासी की महारानी लक्ष्मीबाई बना दिया। यही रानी लक्ष्मीबाई जब विवाह से पूर्व मनूबाई थी, तो एक बार नाना साहब द्वारा हाथी मे न बैठाने पर वह हठ करने लगी थी। उस समय जब पिता ने उसे भाग्य का उलाहना दिया तो उसने कहा था—"हा-हा, लिखा है मेरे भाग्य मे, एक छोड दस हाथियो मे बैठना लिखा है।" इसे नियति का एक विचित्र सयोग ही कहा जाएगा, आज वही मनूबाई अपने पति राजा गगाधर राव के 22 हाथियो की स्वामिनी थी। महारानी लक्ष्मीबाई ने अपने बैठने के लिए एक सुन्दर हाथी चुन लिया। गगाधर राव उनकी हर इच्छा पूर्ण करने के लिए तैयार रहते थे। उन्होने उस हाथी के लिए सोने-चादी के तारो से मढा हुआ झूला बनवा दिया, उसके दात सोने से मढ दिये

गये तथा उसे अनेक प्रकार के सोने-चादी के आभूषणो से अलकृत कर दिया गया। उस पर बैठकर महारानी लक्ष्मीबाई घूमने जाती, तो उनकी प्रजा बडी उत्सुकता के साथ उनके दर्शन करने लगती।

महारानी लक्ष्मीबाई को घुडसवारी का भी शौक था। पतिगृह मे आकर उनकी यह इच्छा भी पूर्ण हो गयी। उनकी घुडसवारी के लिए महाराज गगाधर ने कई उत्तम घोडे खरीदे थे। यही नही उन्होने महारानी के लिए एक बहुमूल्य एव भव्य पालकी भी बनवाई, जिसे एक दर्जन कहार उठाते। उन कहारो के लिए भी विशेष प्रकार के सुन्दर वस्त्र बनाये गये।

लक्ष्मीबाई-गंगाधर राव की तीर्थ-यात्रा

शासन-प्रबन्ध व्यवस्थित हो जाने पर महाराज गगाधर राव ने तीर्थ-यात्रा का विचार किया। इस विषय मे उन्होने गवर्नर जनरल को सूचना दे दी। अत अग्रेज सरकार की ओर से उनकी यात्रा का समुचित प्रबन्ध कर दिया गया तब माघ शुक्ला सप्तमी सवत् 1907 को वह पत्नी सहित तीर्थ-यात्रा पर चल पडे। सभवत वह इस तीर्थ-यात्रा मे गया, प्रयाग आदि होते हुए अन्त मे वाराणसी पहुचे। यह नगरी लक्ष्मीबाई की जन्मभूमि थी। वहा पहुचने पर उन्हे अपार प्रसन्नता हुई। सभी तीर्थो मे राजा और रानी ने पूजा, दान आदि धार्मिक कार्य सम्पन्न किये। फिर वह वापस झासी लौट आये। तीर्थ-यात्रा से लौटने के अवसर पर झासी मे आनन्दोत्सव मनाया गया।

इस तीर्थ-यात्रा की कुछ घटनाओ से महाराज गगाधर राव के स्वाभिमानी व्यक्तित्व का परिचय मिलता है। इस यात्रा के लिए मार्ग मे सभी स्थानो पर उनके लिए अग्रेज सरकार ने समुचित व्यवस्था की थी तथा सभी अधिकारियो को इसकी सूचना दे दी गयी थी। वाराणसी पहुचने पर एक अधिकारी राजा गगाधर राव को नही पहचान पाया, अत उसने उनके सम्मान पर विशेष ध्यान नही दिया। इस पर महाराज रुष्ट हो गये। जब उसे अपनी भूल के विषय मे ज्ञात

हुआ, तो उसने महाराज से क्षमा-याचना की। महाराज ने उसे क्षमा कर दिया। इसी प्रकार एक स्थान पर राजेन्द्र बाबू नामक एक बगाली महोदय ने भी महाराज के समक्ष खडे होकर अभिवादन नही की। इस पर राजा गगाधर राव उससे बडे कुपित हुए तथा उसे कडा दण्ड दिया। राजेन्द्र बाबू अच्छी पहुच वाला व्यक्ति था। उसने गगाधर राव के इस व्यवहार के विरुद्ध अग्रेज उच्चाधिकारियो से शिकायत की, किन्तु इसका कोई परिणाम न निकला। उससे कहा गया कि "गगाधर राव एक बहुत बडे राजा है। उनका उचित सम्मान करना प्रत्येक का कर्तव्य है। यदि आप उनका उचित सम्मान नही करना चाहते थे, तो यही अच्छा रहता कि आप घर मे बैठे रहते।" उनके स्वाभिमानी व्यक्तित्व की एक अन्य घटना उल्लेखनीय है—कहा जाता है कि जिस समय गगाधर राव ने झासी मे अग्रेज सेना रखना स्वीकार किया, उसी समय उन्होने अग्रेजो से अपनी भी एक शर्त मनवा ली कि यह अग्रेज सेना प्रतिवर्ष दशहरे के दिन उन्हे सलामी देगी। एक बार दशहरा रविवार के दिन पडा। अत अग्रेज सेना के अधिकारी ने उनके पास सूचना भेज दी कि रविवार की छुट्टी के कारण अग्रेज सेना उन्हे सलामी नही दे सकेगी। इस सूचना के मिलने पर महाराज गगाधर राव अत्यन्त क्रोधित हुए और तत्काल अपनी सजी-धजी सेना के साथ अग्रेज सेना की छावनी जा पहुचे। उन्होने उस सैनिक अधिकारी से इस धृष्टता का स्पष्टीकरण मागा। विवश होकर उसे महाराज से क्षमा मागनी पडी तथा सलामी परेड मे भाग लेना पडा।

अल्पकालिक मातृत्व

अगहन शुक्ला एकादशी सवत् 1908 (सन् 1851) को महारानी लक्ष्मीबाई ने एक पुत्र को जन्म दिया। पुत्र-रत्न पाकर महाराज तथा महारानी दोनो को अपार प्रसन्नता हुई। सारे राज्य मे मगल मनाया गया। सम्पूर्ण झासी मे प्रसन्नता का सागर हिलोरे लेने लगा। महाराज ने दीन दुखियो, याचको, ब्राह्मणो आदि के लिए अपने कोष

का मुह खोल दिया। महाराज को अपना जीवन सफल जान पडा। महारानी भी पुत्र-लाभ से अपनी नारी की समग्रता का अनुभव कर फूली न समायी, किन्तु सम्भवत भाग्य को कुछ और ही स्वीकार्य था, यह प्रसन्नता क्षणिक सिद्ध हुई, केवल तीन मास मे ही वह पुत्र इस ससार से चल बसा।

गगाधर राव की अस्वस्थता

पुत्र-वियोग से राजा गगाधर राव को भारी आघात पहुचा। परिणामस्वरूप धीरे-धीरे उनका स्वास्थ्य गिरने लगा और अन्त मे वह गम्भीर रूप से अस्वस्थ हो गये। अनेक प्रकार से चिकित्सा-उपचार होने पर भी उनकी दशा मे कोई विशेष सुधार न हुआ। अक्टूबर, 1853 की नवरात्रो मे उन्होंने कुलदेवी महालक्ष्मी की उपासना की। इसमे उन्हे कुछ परिश्रम करना पडा। इससे उनका स्वास्थ्य और भी गिर गया। विजय दशमी के दिन से उन्हे सग्रहणी भी हो गयी। झासी के सभी प्रसिद्ध चिकित्सको ने उपचार किया, किन्तु परिणाम शून्य ही रहा। झासी के उप-राजनीतिक अभिकर्ता मालकम ने भी उनकी चिकित्सा के लिए प्रबन्ध किया और उनके स्वास्थ्य के विषय मे अग्रेजी सरकार को भी सूचना दे दी।

प्रत्यक्ष उपायो अथवा पौरुष के निष्फल हो जाने पर मनुष्य अदृश्य परमात्मा को ही अपना आश्रय समझने लगता है। अत महाराज गगाधर राव की सुस्वास्थ्य की कामना के लिए भी पूजा, होम, जप अनुष्ठान आदि कराये गये। नवम्बर के तीसरे सप्ताह मे महाराज की दशा अत्यन्त दयनीय हो गयी। उनके जीवित रहने की आशा जाती रही।

दत्तक पुत्र बनाना

अन्त मे प्रधान मन्त्री नरसिह राव तथा मोरोपन्त ने राज्य के विषय मे उनके विचार पूछे, तो वह (गगाधर राव) बोले—"भले ही मुझे अभी तक आशा है कि मैं बच जाऊगा, फिर भी मैं धर्मानुसार

दत्तक पुत्र लेना चाहता हू। हमारे घराने मे वासुदेव नेवालकर का आनन्द राव नामक एक पुत्र है, उसे गोद ले लेना चाहिए।"

आनन्द राव उस समय पाच वर्ष का बालक था। इसके लिए रानी लक्ष्मीबाई भी सहमत हो गयी। अत गोद लेने का दिन निश्चित कर लिया गया और उस दिन झासी के राजदरबार मे पण्डित विनायक राव ने पूर्ण धार्मिक रीति मे दत्तक विधान सम्पन्न कराया। इसके पश्चात दत्तक पुत्र का नाम आनन्द राव से बदलकर दामोदर गगाधर राव रख दिया गया। महाराज ने स्वय उसका राज-कुल की परम्परा के अनुसार स्वागत किया। दत्तक विधान के सम्पन्न होते समय दरबार मे सभी मन्त्री, सभासद, राज्य के कई प्रतिष्ठित पुरुष, बुन्देलखण्ड के उप-राजनीतिक अभिकर्ता मेजर एलिस तथा स्थानीय अग्रेज सेना का अधिकारी कप्तान मार्टिन आदि उपस्थित थे।

दत्तक पुत्र की सूचना सरकार को

जिस समय महाराज ने उक्त पुत्र गोद लिया उसी समय उन्होने स्वय बोलकर अग्रेज सरकार के लिए एक सूचना पत्र लिखाया। लिखते समय उपर्युक्त सभी व्यक्ति वहा पर उपस्थित थे। यह पत्र निम्नलिखित शब्दों मे लिखा गया था—

"बुन्देलखण्ड मे अग्रेजी राज्य स्थापित होने से पूर्व मेरे पूर्वजो ने अग्रेजी सरकार की जो सेवा की, उसे सारा यूरोप जानता है। मै स्वय भी जिस प्रकार यथाशक्ति सरकार की प्रत्येक आज्ञा का पालन करता हू, उसके विषय मे सभी राजनीतिक अभिकर्ता परिचित ही है। अब एक असाध्य रोग मे पीडित होने के कारण मुझे भय है कि मेरे वश के नष्ट होने का समय आ गया है। मै सदैव ब्रिटिश सरकार का सच्चा सेवक रहा हू तथा उसकी भी मुझ पर कृपा दृष्टि रही है। अत मै सरकार का ध्यान उस सन्धि की ओर आकृष्ट करना चाहता हू, जो मेरे पूर्वजो के साथ हुई थी। इस सन्धि के अनुसार मैने एक पाच वर्षीय बालक आनन्दराव को गोद लेकर उसका नाम दामोदर गगाधरराव रख दिया है।

यह बालक मेरे ही वंश का है और सम्बन्ध में मेरा पोता लगता है। मुझे यह भी आशा है कि ईश्वर की कृपा तथा सरकार बहादुर की दया-दृष्टि से मैं शीघ्र नीरोग हो जाऊंगा। मेरी अवस्था के विचार से यह भी बहुत सम्भव है कि भविष्य में कभी मेरी कोई अपनी सन्तान हो जाए। यदि ऐसा हुआ, तो उसी समय पुनः विचार कर लिया जाएगा। किन्तु यदि इस समय मैं इस रोग से न बच सका, तो जिस प्रकार मैं सरकार की उत्तम व्यवहार के साथ सेवा करता आया हूं, उस पर समुचित रूप से ध्यान देते हुए इस अल्पावस्था के बालक पर भी सरकार की दया-दृष्टि उसी प्रकार बनी रहे, जैसी मुझ पर रही है। जब तक मेरी पत्नी जीवित रहे, वही इस राज्य की स्वामिनी तथा इस बालक की मां समझी जाए। समस्त राज्य-व्यवस्था उसके हाथों में उसी प्रकार रहे, जिससे मेरे बाद उसे किसी प्रकार का कष्ट न हो।"

इस पत्र को लिखाने के बाद महाराज ने इसे मेजर एलिस को दिया और उसे बार-बार आग्रह करते हुए पूर्व सन्धि की दूसरी धारा की याद दिलायी, जिसमें स्पष्ट लिखा था कि झांसी का राज्य वंश-परम्परागत रूप में चलता रहेगा। पत्र देते समय महाराज का गला भर आया, तब मेजर एलिस ने अत्यन्त विनम्रता से उत्तर दिया—"महाराज, आपका सूचना पत्र सरकार के पास भेजकर इसके लिए मुझसे जो भी प्रयत्न हो सकेगा, मैं अवश्य करूंगा।'

राजा गंगाधरराव की मृत्यु

जिस समय महाराज गंगाधर राव ने गोद लेने सम्बन्धी सूचना-पत्र मेजर एलिस को दिया, बोलने के कारण वह बेहोश हो गए। मेजर एलिस और कप्तान मार्टिन ने उन्हें दवा दी तथा अपने निवास पर चले गये। महारानी लक्ष्मीबाई पति के पलंग के पास ही परदे के पीछे बैठी हुई थी। अंग्रेज अधिकारियों के चले जाने पर वह पति के पास आयी। उस समय उनकी मनोदशा क्या रही होगी, इसकी कल्पना भर की जा सकती है। मेजर एलिस ने बुन्देलखण्ड के राजनीतिक अभिकर्ता को उसी समय राजा गंगाधरराव का समस्त विवरण लिख भेजा।

महाराज को औषधि दी गयी, जिससे उन्हें कुछ तात्कालिक लाभ हुआ। वह कुछ देर के लिए सो गये। दोपहर बाद जब लगभग 4 बजे महाराज ने आखे खोली, तो राजमहल के बाहर विशाल जनसमुदाय एकत्र हो गया था, यह घटना 20 नवम्बर, 1853 ई० की है। सभी लोग उनके स्वास्थ्य के विषय मे जानना चाहते थे। मेजर एलिस ने भी महाराज को बचाने के लिए काफी भाग-दौड की, वह अंग्रेज डॉक्टर एलन को उपचार के लिए लाया, किन्तु महाराज ने अंग्रेजी दवा लेना अस्वीकार कर दिया। वस्तुत उस समय उच्च कुलीन हिन्दू अंग्रेजी दवाओ का प्रयोग नही करते थे।

21 नवम्बर, 1853 को महाराज की नाडी की गति अत्यन्त मन्द पड गयी, शरीर ठण्डा पडने लगा और अन्तत वह चल बसे। इससे सारा राज्य शोक मे डूब गया। महाराज की अन्त्येष्टि राजोचित रूप से की गयी। मेजर एलिस, कप्तान मार्टिन आदि सभी अंग्रेज अधिकारी भी शोक सूचक वस्त्रो मे शवयात्रा मे सम्मिलित हुए दाह-संस्कार से लौटने पर एलिस आदि अंग्रेज अधिकारी लक्ष्मीबाई के पास आये और उन्हे सान्त्वना देकर चले गये।

महाराज गगाधरराव स्वर्गवासी हो गये। समाज के लोगो ने लक्ष्मीबाई को सान्त्वना देकर औपचारिकता पूरी कर ली, किन्तु उस नारी के हृदय की वेदना को कौन समझ सकता है, जो अपने जीवन के अठारह वर्ष पूर्ण होते ही विधवा हो गयी हो। उन्नीसवे वर्ष मे पग रखते ही वह विधवा हो गयी थी। वह एक सामान्य स्तर के ब्राह्मण की पुत्री थी। सयोग से अथवा पुरुष जाति के एकाधिकार मे वह बाल्यावस्था मे ही एक प्रौढ की रानी बनी। बनने पर भी एक स्त्री के रूप मे क्या मिला? विवाह के प्राय ग्यारह वर्ष बाद वैधव्य।

अध्याय : 3

झांसी पर दुर्भाग्य के काले बादल

प्रथम प्रहार

राजा गगाधरराव की मृत्यु होते ही झासी पर दुर्भाग्य के काले बादल घिर आये। विधवा का अभिशप्त जीवन आरम्भ होते ही महारानी लक्ष्मीबाई के जीवन की सभी प्रकार की सुख-शान्ति को ग्रहण लग गया। महाराज की अन्त्यष्टि मे लौटने पर एलिस, मार्टिन आदि अंग्रेज अधिकारी उन्हे सान्त्वना देने भी आये थे, किन्तु शीघ्र ही उन्हे अंग्रेजो का एक नया रूप देखने को मिला। उनसे विदा लेने के बाद एलिस सर्वप्रथम किले मे पहुचा। उसने राजकोष का निरीक्षण किया, उसमे अंग्रेजी सेना के लिए रखे गये 2,45,768 रुपये सुरक्षित थे। अत उसने राजकोषाध्यक्ष प० ज्वालानाथ के सामने उसमे ताला लगाकर उसे सील्ड कर दिया। इसके बाद अन्य कक्षो म रखे बहुमूल्य वस्त्राभूषणो को भी उनकी सूची बनाकर सील्ड कर दिया गया और वहा ग्वालियर राज्य की कटिजेण्ट सेना की नौवीं बटालियन का पहरा लगा दिया गया। लोगो ने अंग्रेजो की इस तत्परता का यही अर्थ लगाया कि शोकाकुल रानी की अवस्था को देखकर सुरक्षा के लिए ही ऐसा किया जा रहा है।

राजनीतिक अभिकर्ता की धूर्तता

21 नवम्बर को ही उपराजनीतिक अभिकर्ता एलिस ने गगाधरराव की मृत्यु की सूचना बुन्देलखण्ड के राजनीतिक अभिकर्ता (पॉलिटिकल एजेण्ट) मेजर मालकम को भेज दी थी। सूचना मिलते ही मालकम ने

भारत सरकार के परराष्ट्र सचिव को 25 नवम्बर को जो पत्र लिखा, उसका संक्षिप्त रूप यहा प्रस्तुत किया जा रहा है—

"महोदय,

1 महामहिम गवर्नर जनरल को यह समाचार देते हुए मुझे दु ख होता है कि 21 नवम्बर को झासी के राजा गगाधर राव का देहान्त हो गया है ।

2 मृत्यु के एक दिन पूर्व उन्होने एक दत्तक पुत्र लिया है, जो उनके अनुसार उनका पोता है, किन्तु वास्तव मे वह रघुनाथ राव की पाचवी पीढी मे है । इस प्रकार वह उनका भतीजा होता है ।

3 मेजर एलिस द्वारा भेजे गये महाराज से भेंट विषयक तीनो पत्र तथा महाराज द्वारा गोद लेने के विषय मे लिखा गया सूचना-पत्र आपकी सेवा में अवलोकनार्थ भेजा जा रहा है ।

4 झासी की प्रजा समझती थी कि रानी के जीते-जी राज्य की सम्पत्ति पर उन्ही के अधिकार की प्रार्थना की जाएगी, किन्तु महाराज ने अपने यहा कोई भी निकट सम्बन्धी उत्तराधिकारी न देखकर मृत्यु से एक दिन पूर्व दत्तक पुत्र ले लिया । इससे झासी के लोगो को आश्चर्य हुआ होगा ।

5 भारत सरकार की सूचनार्थ झासी राजघराने की अद्यतन वशावली भेजी जा रही है । इससे स्पष्ट हो जाएगा की महाराज का दत्तक पुत्र उनके पूर्वज रघुनाथराव के वश का है ।

6 मैंने एलिस को 2 तारीख को एक सूचनापत्र भेजा था, जिसकी सूचना ता० 3 को सरकार को भेज दी गयी है । एलिस उसी के अनुसार कार्यवाही कर रहा है । सरकार का अन्तिम निर्णय ज्ञात न होने तक स्व० महाराज की दत्तक विधि पर ध्यान नही दिया जाएगा ।

7 झासी-ब्रिटिश शासन के पारस्परिक सम्बन्धो को जानने के लिए नीचे कुछ प्रमाण दिये जा रहे हैं, जिनसे यह स्पष्ट हो जाएगा कि स्व० महाराज को दत्तक पुत्र बनाने का अधिकार था या नही ।

8 सन् 1804 मे बुन्देलखण्ड पर अधिकार करते समय हमने शिवराव भाऊ से पेशवा के सूबेदार के रूप मे सन्धि की थी । सन्

1819 मे पेशवा ने बुन्देलखण्ड का अधिकार हमे दे दिया था, तब हमने रामचन्द्र राव को झासी राज्य वहा परम्परागत रूप मे दे दिया था। सन् 1832 मे उसे सूबेदार के स्थान पर राजा की पदवी दी गयी थी।

9 सन् 1835 मे रामचन्द्र राव के देहान्त पर, जहा तक मुझे ज्ञात है, भाऊ के दो पुत्र रघुनाथ राव तथा गगाधर राव जीवित थे, अत उन्हे क्रम से यह राज्य दिया गया। गगाधर राव की मृत्यु पर यह वश समाप्त हो गया है।

10, सन् 1835 मे रामचन्द्र राव तथा उसकी रानी के दत्तक पुत्रो को राज्य का उत्तराधिकारी नही माना गया था। इससे स्पष्ट है कि वहा राजा या रानी को दत्तक पुत्र लेने से पूर्व सरकार से अनुमति लेना आवश्यक था।

11 गगाधर राव ने शासन अपनी पत्नी को सौंपने की इच्छा व्यक्त की है, जो एक योग्य स्त्री हैं, फिर भी झासी को अपने अधिकार मे लेने मे सरकार को विलम्ब नही करना चाहिए। मुझे विश्वास है कि रानी स्वर्गीय राजा की निजी सम्पत्ति तथा कुछ मासिक पेशन देने से प्रसन्न हो जाएगी।

12 रानी को कितनी पेंशन दी जाए, इस विषय मे मैं कुछ नही कह सकता। बुन्देलखण्ड मे मराठो का अब यही राजघराना रह गया है, अब सभी पदच्युत मराठा नरेशो के आश्रित इसी रानी की शरण मे आएगे। अत उन्हें कम-से-कम 5000 रुपये मासिक पेशन दी जाए।

13 झांसी लम्बे समय से हमारे अधीन रहा है, मेजर रास पहले भी उसकी व्यवस्था कर चुका है। उसकी व्यवस्था पडोसी सिन्धिया सरकार के समान करने मे हमे कोई कठिनाई नही होगी।

14 यदि सरकार इसे मेरे अधीन रखना चाहे, तो म तैयार हू। मुझे मेजर एलिस की योग्यता पर सन्देह है। अत झासी को बुन्देलखण्ड के कुछ अन्य जिलो के समान जबलपुर के कामेश्वर के अधीन कर दिया जाए।

स्पष्ट है इस सूचना मे मालकम मे तथ्यो को तोड-मरोड कर प्रस्तुत

किया था। इस सूचना के बाद वह झासी की व्यवस्था करने मे सलग्न हो गया।

डलहौजी की हड़प नीति

अंग्रेज भारत मे व्यापारी बनकर आये थे, किन्तु अल्प ही समय मे वे भारत के भाग्यविधाता बन बैठे। सन् 1848 मे लार्ड डलहौजी भारत का गवर्नर जनरल बनकर आया। वह किसी भी ऐसे राज्य को अपने अधिकार मे लेना उचित समझता था, जिसके शासक का अपना सगा पुत्र उत्तराधिकारी न हो। इस विषय मे उसने कहा था "जो प्रदेश पहले हमारे अधिकार मे है, उनके बीच यदि कोई छोटी रियासत हो, तो उस पर अधिकार करके हमे अपने राज्य का विस्तार करना चाहिए, इस पर कोई भी आपत्ति करने का अधिकारी नही है, इन छोटी रियासतो से हमे कष्ट ही मिलता है। इन्हे अपने राज्य मे मिलाने से इनके कष्ट भी दूर हो जाएगे और हमे भी आर्थिक लाभ होगा। यह मेरी निश्चित विवेकपूर्ण राय है। इस नीति का पालन करना अंग्रेजी सरकार का आवश्यक कर्तव्य है। रियासतो पर अधिकार करने के अवसर हाथ से नही जाने देने चाहिए। इस प्रकार के अवसर पैदा किये जाते है। राज्य का कोई उत्तराधिकारी न हो, अथवा सरकार की अनुमति पर ही कोई उत्तराधिकारी क्यो न बनाया गया हो, इन दोनो प्रकार के अवसरो को हाथ से निकल जाने की भूल कदापि नही करनी चाहिए।'

अंग्रेजी सरकार इसी नीति पर चल रही थी। अत वह किसी भी प्रकार झासी को अपने अधिकार मे कर लेना चाहती थी। मालकम द्वारा भारत सरकार को भेजी गयी उपर्युक्त सूचना भी इसी नीति का प्रतिनिधित्व करती है। अत गगाधर राव की मृत्यु के बाद सरकार ने जान-बूझकर उनकी सूचना का समय पर कोई उत्तर नही दिया।

गवर्नर जनरल को महारानी का प्रार्थना-पत्र

जिस समय मालकम ने उपर्युक्त सूचना सरकार को भेजी, गवर्नर जनरल अवध प्रान्त के दौरे पर थे। चार-पाच मास तक कोई भी उत्तर

न मिलने पर महारानी लक्ष्मी का चिन्तित होना स्वाभाविक ही था। वह बार-बार अपने पिता से इसी विषय पर चर्चा करती और पिता मोरोपन्त उन्हें धैर्य बधाते। अन्त मे महारानी ने अपने मन्त्रियो से परामर्श कर मेजर एलिस के माध्यम से गवर्नर जनरल को एक पत्र लिखा, इस पत्र का सक्षिप्त रूपान्तर निम्नलिखित है—

"झासी राज्य के अभिलेखो से स्पष्ट है कि इस प्रान्त मे ब्रिटिश राज्य की स्थापना से पूर्व हमारे श्वसुर शिवराव भाऊ ने अंग्रेजी सरकार की सहायता की थी, जिसके बदले मे की गयी अंग्रेजी कृपा से हम सदा अनुग्रहीत हुए। सन् 1842 मे कर्नल स्लीमन ने हमारे पति से एक सन्धि की थी, जिसके अनुसार 1817 मे रामचन्द्र राव के साथ हुई सन्धि को पूर्ण मान्यता दी गयी। शिवराव भाऊ के सद्व्यवहार तथा उनके साथ मित्रतापूर्ण सम्बन्धो के कारण अंग्रेजी सरकार ने उनकी अन्तिम इच्छा के अनुसार ही रामचन्द्र राव के साथ उक्त सन्धि करते समय झासी राज्य उन्हे वंशानुगत रूप मे दे दिया था। इससे इस बात की पुष्टि होती है कि यदि कभी दुर्भाग्य से झासी का कोई राजा सन्तानहीन रह जाए तो सरकार उसके दत्तक पुत्र को पूर्ण मान्यता देगी तथा हमारे वंश-परम्परागत राज्य का कभी अन्त नही होने देगी। हिन्दू धर्म-शास्त्र मे मृत पूर्वजो को पिण्डदान आदि देने के लिए औरस तथा दत्तक पुत्र मे कोई अन्तर नही माना गया है। अत दत्तक पुत्र बनाना हिन्दू धर्म के अनुकूल है। इसी नियम के अनुसार हमारे मृत पति ने दत्तक पुत्र बनाने की इच्छा व्यक्त की तथा विद्वान पण्डितो द्वारा नियमपूर्वक दत्तक विधान किया गया। महाराज की आज्ञा पर इस अवसर पर मेजर एलिस तथा कप्तान मार्टिन को भी आमन्त्रित किया गया। तब उन्होंने इसकी लिखित सूचना आपके पास भिजवाने के लिए मेजर एलिस को दे दी थी। उन्होने वचन दिया था कि वह समस्त वृत्तान्त से सरकार को अवगत करा देगे। दूसरे दिन हमारे पति की मृत्यु हो जाने पर उनका समस्त क्रिया कर्म हमारे दत्तक पुत्र ने ही किया। इस बालक को हमारे पति ने सरकार की कृपा के अधीन ही गोद लिया है। अब उसकी रक्षा-सुरक्षा आपकी कृपा पर

ही निर्भर है। अन्त में सरकार से हमारी यह भी प्रार्थना है कि उसने जिस प्रकार दतिया नरेश परीक्षित, जालौन के राजा बालाराव तथा ओरछा के शासक तेजसिंह के दत्तक पुत्रो को मान्यता दी है, उसी प्रकार हमारे दत्तक पुत्र को भी मान्यता दी जाए। झासी की पूर्व सन्धि मे 'सदा' शब्द का प्रयोग हुआ है, अत उक्त राजाओ की अपेक्षा हमे दत्तक पुत्र बनाने का अधिकार अधिक है।"

यह पत्र गवर्नर जनरल के लिए भेज दिया गया। मेजर एलिस ने 24 दिसम्बर 1853 को रानी के अधिकार को न्यायोचित बताते हुए सरकार को एक पत्र मे लिखा था—"झासी और ओरछा के साथ हुई सन्धियो का आशय समान है, अत एक को दत्तक पुत्र लेने का अधिकार देना और दूसरे को न देना न्यायसगत न होगा। 27 मार्च 1836 के पत्र मे कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स ने स्वीकार किया है कि देशी रियासतो के शासको को पुत्र गोद लेने का पूर्ण अधिकार है। आज *यदि यह कहा जाए कि जिन राजाओ को उनकी सेवाओ के बदले* शासक बनाया गया है, वे *अन्य* राजवशो के समान प्राचीन नही है, और केवल इसीलिए उनका यह अधिकार स्वीकार न किया जाए, तो मै समझता हू, ऐसा करना डायरेक्टरो के आदेशो की महान अवमानना होगी।"

यह पत्र कई दिनो तक बुन्देलखण्ड के राजनीतिक अभिकर्ता के ही पास रहा। वस्तुत वह झासी को अंग्रेजी साम्राज्य मे मिलाने के लिए कमर कस चुका था।

मालकम की दूसरी धूर्तता

गगाधर राव के निधन पर झासी राज्य का अनिश्चित भविष्य देख, उनके पूर्व स्थान खानदेश का उनका एक अन्य सजातीय इस राज्य का दावेदार बन बैठा, जिसका नाम सदाशिव राव नारायण था। उसने झासी के सिंहासन पर अपना अधिकार जताते हुए मालकम के पास एक प्रार्थनापत्र भेजा। मालकम ने इस पत्र को 31 दिसम्बर 1853 को गवर्नर जनरल के पास भेजा और साथ मे अपनी सस्तुति

मे लिख भेजा—"यदि स्वर्गीय राजा के पूर्वजो मे किसी उत्तराधिकारी के अधिकार को मान्यता दी जाए, तो यह प्रार्थी उनका सबसे निकट सम्बन्धी है, जो झासी के राजसिंहासन को प्राप्त करने का अधिकारी हो सकता है।"

यह बात समझ मे नही आती कि मालकम वस्तुत क्यो झासी राज्य को अग्रेजी राज्य मे मिलाने पर तुला हुआ था। उसकी इस दूसरी धूर्तता का यह अर्थ न लगाया जाए कि वह सदाशिव राव नारायण को झासी के सिंहासन पर बैठाना ही चाहता था। उसने यह सस्तुति केवल मामले को और अधिक उलझाने के उद्देश्य से की थी यही सत्य जान पडता है।

झांसी-विलय का निर्णय

गगाधर राव की मृत्यु के प्राय तीन मास बाद जब गवर्नर जनरल अपने दौरे से लौटे, तभी झासी के मामले पर विचार किया गया। विदेश सचिव जे० पी० ग्राण्ट इस प्रकार के मामलो मे बडा घाघ माना जाता था। उसी ने झासी राज्य के विलय की रिपोर्ट तैयार की। इसमे उसने झासी राज्य के समग्र इतिहास तथा अग्रेजी सरकार से उसके सम्बन्धो पर विहगम दृष्टि डालते हुए इस बात पर बल दिया कि झासी का अग्रेजी राज्य मे विलय कर दिया जाए। उसकी रिपोर्ट पर पर्याप्त विचार-विमर्श के बाद गवर्नर जनरल और उनके कौन्सिलरो ने अपना जो निर्णय व्यक्त किया, उसका सक्षिप्त रूप निम्न प्रकार है—

झासी नरेश गगाधर राव ने नवम्बर 1853 म पुत्र न होने के कारण अपनी मृत्यु के एक दिन पूर्व एक दत्तक पुत्र बनाया। उनकी पत्नी प्रार्थना करती है कि उक्त पुत्र को झासी का उत्तराधिकारी स्वीकार किया जाए।

परराष्ट्र सचिव के सक्षिप्त वृत्तान्त से झासी और ब्रिटिश शासन के सम्बन्ध स्पष्ट हो जाते है। अत इस पर तथा झासी राज्य से हुए पत्र-व्यवहार पर विचारपूर्वक ध्यान देते हुए मे झासी राज्य की भावी व्यवस्था किस प्रकार हो, इस बात पर अपनी सम्मति व्यक्त करता हू।

मेरा मत है कि यह राज्य ब्रिटिश सरकार के हाथ मे आ गया है, अत राजनीतिक दृष्टि से अब इसे अपने हाथ मे रखना ही उचित होगा ।

झासी की व्यवस्था किस प्रकार होगी, इसका निणय हाल ही मे नागपुर और झासी राज्यो के सम्बन्ध मे वाद-विवाद के समय कर लिया गया है । बुन्देलखण्ड की छोटी-छोटी रियासतो के विषय मे चार्ल्स मेटकाफ द्वारा बनाए गए निर्णय 1837 मे स्वीकार कर लिये गए हे । आश्रित राज्यो के लिए 1846 मे कोर्ट आफ डायरेक्टर्स द्वारा निर्धारित नियमो के अनुसार से उत्तराधिकारी रहित झासी राज्य के विलय का हमे पूर्ण अधिकार है ।

उक्त सिद्धान्तो मे सतारा के समान सार्वभौम सत्ता वाली न होने पर कोई भी रियासत गोद लिये उत्तराधिकारी को नही प्राप्त हो सकती । इसकी अनुमति देने के लिए हम बाध्य नही है । बुन्देलखण्ड के विषय मे चार्ल्स मेटकाफ का भी यही मत है । फ्रेजर ने वशानुगत तथा जागीर प्राप्त राजाओ मे कोई भेद नही माना है । मे मानता हू पुत्र न होने पर दत्तक पुत्र बनाया जा सकता हे, किन्तु दत्तक पुत्र हिन्दू धर्मशास्त्रो के अनुसार हो तथा इसके लिए ब्रिटिश सरकार से पूर्व अनुमति ली जाए। जागीर मे मिले राज्यो मे उत्तराधिकारी नियत करने का अधिकार जागीर देने वाले को है । वह औरस पुत्र न होने पर जागीर वापस ले सकता है ।

झासी राज्य ब्रिटिश सरकार द्वारा दी गयी जागीर था । अत औरस पुत्र न होने पर उसे वापस लेने का हमे पूर्ण अधिकार है ।

निर्विवाद रूप से झासी एक आश्रित राज्य है । वह टिहरी राज्य से भी कम स्वतन्त्र है । वस्तुत यह टिहरी के समान ही है, जो टिहरी के ही पूर्व स्वामी पेशवा द्वारा सूबेदार को दिया गया था । शिवराव भाऊ और अग्रेजी सरकार की 1804 की सन्धि मे झासी के सूबेदार को पेशवा का आश्रित कहा गया है । शिवराव भाऊ ने इसे स्वय भी स्वीकार किया है । जब उसने सरकार से प्रार्थना की थी कि राज्य उसके पौत्र को दिया जाए, तो सरकार ने कहा था कि इसके

लिए पेशवा की सहमति आवश्यक है। सभी प्रमाणो से स्पष्ट है कि झासी के शासक पेशवा के अधीन थे। सन् 1817 मे पेशवाओ का अधिकार अग्रेजी सरकार को मिल गया था, फिर भी झासी पर रामचन्द्र राव का वशानुगत अधिकार नही माना गया। इसी वर्ष सम्पन्न सन्धि से उसे वशानुगत अधिकार मिल गया, फिर भी वह पूर्ण राजा नही माने गए। सन् 1835 मे रामचन्द्रराव के दत्तक पुत्र को राज्य का उत्तराधिकारी नही माना गया, उसके चाचा उत्तराधिकारी माने गए।

गगाधर राव का औरस पुत्र नही है, अत झासी राज्य को वशानुगत रूप मे चलाने वाला कोई उत्तराधिकारी नही है।

अपनी मृत्यु से एक दिन पूर्व लिया गया गगाधर राव का दत्तक पुत्र उनके वश का दूर का सम्बन्धी है। आसन्न मरणकाल मे की गयी इ, दत्तक विधि को विश्वसनीय नही माना जा सकता। इससे पूर्व राजा ने कभी दत्तक पुत्र बनाने की इच्छा व्यक्त नही की थी। लोग समझते थे राजा राज्य को अपनी रानी के अधीन रखने की प्रार्थना करेंगे। अत उनके इस निर्णय से सभी को आश्चर्य हुआ होगा। मालूम होता है, पुत्र गोद लेने के पीछे कोई चाल है, क्योंकि सरकार की पहली सन्धि शिवराव भाऊ से हुई थी, उसके वश का कोई उत्तराधिकारी नही रह गया है।

लक्ष्मीबाई ने दतिया, टिहरी और जालौन आदि बुन्देलखण्ड के राज्यो के समान दत्तक पुत्र को स्वीकार करने के लिए प्रार्थना की है। टिहरी और दतिया स्वतन्त्र राज्य है। उनके नियम आश्रित राज्यो पर लागू नही हो सकते। हा, जालौन इसका अपवाद है, किन्तु यह सरकार की अपनी इच्छा है, इसका यह अर्थ नही कि सरकार ने दत्तक पुत्र लेने के अधिकार को स्वीकार कर लिया है। दत्तक लेने के बाद जालौन सरकार की रियासत मानी जाती है।

रानी ने 1817 की सन्धि का हवाला देते हुए वश-परम्परा मे इस दत्तक को स्वीकार करने की प्रार्थना की है, यह प्रार्थना स्वीकार नही की जा सकती है। यदि पुत्र गोद लेना ही था, तो उत्तराधिकारी

का निर्णय सरकार करती । रामचन्द्र राव के दत्तक पुत्र को भी अस्वीकार कर दिया गया था, अत इस विषय मे किसी विवाद के लिए स्थान नही रह जाता ।

उपर्युक्त तथ्यो से सिद्ध होता है कि झासी एक आश्रित रियासत है । वहा के शासक बुन्देलखण्ड के अन्य आश्रित जागीरदारो के समान ही हैं । अत जागीर देने वाले को उत्तराधिकारी नियत करने का पूरा अधिकार है । झासी के जितने शासको के अग्रेजो से सम्बन्ध रहे, उनमे किसी का भी उत्तराधिकारी नही रहा । गगाधर राव का कोई पुत्र न था । उनके पुत्र गोद लेने की इच्छा प्रजा को भी ज्ञात न थी । जिस रामचन्द्र राव को झासी राज्य वश-परम्परा के लिए दिया गया था, उसके दत्तक पुत्र को भी सरकार ने अस्वीकार कर दिया था । अत गगाधर राव के दत्तक पुत्र को अस्वीकार करने का सरकार को पूरा अधिकार है ।

इस अधिकार के अनुसार सरकार को झासी को अपने नियन्त्रण मे लेने का पूर्ण अधिकार है । यद्यपि इस छोटे-से राज्य को अपने अधिकार मे लेने से सरकार को विशेष लाभ नही है, फिर भी यह सरकारी क्षेत्र है । इसे अधिकार मे लेने से सरकार को बुन्देलखण्ड की व्यवस्था सुधारने मे मदद मिलेगी । इससे झासी का भी कल्याण होगा । निम्न तथ्य ध्यान देने योग्य है—

रामचन्द्र राव के बाद जिसे गद्दी दी गयी, वह कुष्ठ रोगी निकला । उसने अपने तीन ही वर्षों के कार्यकाल मे अपनी अयोग्यता सिद्ध कर दी, झासी की आर्थिक व्यवस्था डावाडोल हो गयी । फिर गगाधर राव को सिहासन पर बैठाया गया । वह भी शासन के अयोग्य थे, अत कुछ समय तक उन्हे भी पूर्ण राज्याधिकार नही दिया गया ।

रानी ने जालौन के समान दत्तक पुत्र को स्वीकार करने की प्रार्थना की है । सन् 1832 मे दत्तक पुत्र लेने की स्वीकृति देते समय जालौन की वार्षिक आय 15 लाख थी, जो आठ वर्षों मे आधी से भी कम रह गयी है । वहा अव्यवस्था फैल गयी है तथा राज्य पर तीस लाख का ऋण चढ गया है । उसकी हरी-भरी भूमि वीरान होने लगी

है। अत झासी के राजा के दत्तक पुत्र को स्वीकार करना उचित नहीं होगा।

• इस तरह जालौन के ही समान झासी मे दत्तक पुत्र को मान्यता देने के परिणाम अच्छे नही होंगे। इन सब बातो पर सचेत होकर विचार करने पर मेरा यही मत है कि राजनीति और कर्तव्य को ध्यान मे रखकर ब्रिटिश सरकार झासी पर अपने अधिकार को पूरी तरह कार्यान्वित करे। गगाधर राव के दत्तक पुत्र को अस्वीकृत कर झासी को उत्तराधिकारीहीन माना जाए तथा अग्रेजी राज्य मे मिला लिया जाए। राजनीतिक अभिकर्ता की राय के अनुसार रानी को अच्छी तरह वेतन दिया जाए तथा झासी की व्यवस्था लेफ्टीनेन्ट गवर्नर के अधीन रखी जाए।

दिनाक 27 फरवरी, 1854 ई०।

डलहौजी के इस निर्णय मे दिये गये तर्कों मे कितना सार है, यह बात पिछले वृत्तान्तो से भली-भाति स्पष्ट हो जाती है। उसने यह दिखाने का प्रयास किया है कि रामचन्द्र राव को झासी का राज्य अग्रेजो की कृपा पर दिया गया था। पूर्व वृत्तान्तो से स्पष्ट है कि यह कथन पूर्ण तथा सत्य नही है। डलहौजी के लिए ऐसा करना कोई नयी बात नही थी। उसके इन तर्कों मे कितना दम है, जालौन के प्रसग से यह भली-भाति स्पष्ट हो जाता है, एक राज्य को एक अधिकार दिया जाए और दूसरे को नही, इसे तानाशाही नही तो और क्या कहा जा सकता है। उसने उपर्युक्त विवरण मे कहा है कि पुत्र न होने पर देशी राजा उसी व्यक्ति को गोद ले सकते है, जिसे अग्रेजी सरकार निश्चित करे। इसे क्या कहा जा सकता है ? गोद भी ले तो अग्रेजो द्वारा तय किये गये बालक को। इस निर्णय से हिन्दुओ के गोद लेने के धर्म-सम्मत अधिकार का स्पष्ट उल्लघन होता था। जबकि ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासनकाल मे ही जार्ज तृतीय द्वारा प्रदत्त अधिकार-पत्र मे स्पष्ट कर दिया गया था कि धार्मिक मामलो मे किसी प्रकार का हस्तक्षेप नही किया जाएगा—"देश के निवासियो के सामाजिक और धार्मिक परम्पराओ तथा नियमो का उचित सम्मान करने के लिए

यह नियम बनाया जाए कि परिवारो के स्वामियो के अधिकार उसी प्रकार सुरक्षित रहेगे, जिस प्रकार उन पर हिन्दू या मुसलमानो के नियमो के अनुसार व्यवहार होता था।"

डलहौजी के इस निर्णय की भारतीयो ने ही नही, स्वय कई अग्रेजो ने भी आलोचना की है। अपनी पुस्तक 'इण्डियन इम्पायर' मे मेजर बेल ने कडी आलोचना की है। यह निर्णय अग्रेजी राज्य का मित्रता के साथ विश्वासघात का एक प्रबल प्रमाण है। स्पष्ट है कि अग्रेजी सरकार ने स्वय अपना वचन भग कर दिया था। उसने झासी के पूर्ववर्ती शासको के साथ हुई सन्धियो को एक किनारे रख दिया था। ब्रिटिश सरकार की देशी राज्यो के साथ जो भी सन्धिया हुई उनके आशय को स्पष्ट करते हुए पार्लियामेण्ट सभा के एक सदस्य डब्ल्यू० एम० टारेन्स ने लिखा है—

"सन्धियो की भाषा प्राय सक्षिप्त होती हे और उसके शब्द सामान्य अर्थ ही सूचित करते हैं। उनमे यह बात पायी जाती है कि काल्पनिक और आकस्मिक रूप से घटित होने वाली भावी घटनाओ का समस्त अर्थ पहले ही निश्चित करके उन सभी का समुचित प्रबन्ध कर दिया जाता है। उनका वास्तविक निश्चित उद्देश्य यही होता है कि सरल भाषा मे शान्ति और मित्रता के सम्बन्धो का स्थूल वर्णन कर दिया जाए। इन सन्धियो का सूचित अर्थ यही होता है कि जब भी आवश्यकता हो, उनका ऐसा प्रयोग करना चाहिए, जो दोनो पक्षो को स्वीकार हो या किसी निष्पक्ष व्यक्ति से निर्णय कराया जाना चाहिए। परस्पर व्यवहार विषयक अधिकार का यही नियम है। इस नियम का पर्यवलोकन करने पर यही ज्ञात होता हे कि जब उत्तराधिकार वशानुगत रूप मे दिया गया था, तब उसका यही अर्थ लगाया गया कि समय पर जो भी उत्तराधिकारी होगे, उन्हे राज्य का समस्त अधिकार तथा वैभव प्राप्त होगा। इस बात का निर्णय विदेशियो के विधान के अनुसार नही किया जाएगा, अपितु उस राज्य के नियमो के अनुसार किया जाएगा, जिसकी स्वायत्तता की रक्षा के लिए सन्धि की गयी थी।"

किन्तु झासी पर अपना निर्णय लिखते समय डलहौजी ने इस आशय को समझने का कोई प्रयत्न नहीं किया। वस्तुत गोद लेने के विषय मे अग्रेजी सरकार ने सदा मनमानी की। जहा और जब वह ऐसा करना अपने हित मे समझती थी तो गोद लेने की अनुमति दे देती थी, और जहा ऐसा न करना अपने लिए लाभदायक समझती थी, तो इसे अस्वीकार कर देती थी। पूर्व कथित जालौन आदि के प्रसगो मे उसकी यह नीति सर्वथा स्पष्ट हो जाती है। इसके कुछ अन्य उदाहरण भी दिये जा सकते है। इस विषय मे वीर विनायक दामोदर सावरकर की कृति '1857 का स्वतन्त्रता सग्राम' की निम्नलिखित पक्तियो को उद्धृत करना समीचीन होगा—

" अब तक मृत राजाओ की पत्नियो के गोद लिये पुत्रो को अग्रेजो ने इससे पूर्व कभी मान्यता न दी होती, तो हम कुछ न कहते, किन्तु यह तो सर्वश्रुत है कि 1826 मे दौलत राव शिन्दे की विधवा रानी के, 1836 मे जनकोजी शिन्दे की विधवा के, 1834 मे धार के राजा की विधवा के और 1841 मे किशनगढ की रानी के गोद लिये पुत्रो को अग्रेजो ने मान्यता दी थी। एक नही, दो नही, अनेक दत्त विधानो को उन्होने मान्य किया था, किन्तु इस सत्य को नही भूलना चाहिए कि उस समय गोद लेने का अधिकार मान्य करना अग्रेजो के लिए लाभप्रद था।"

रानी की मनोदशा

इस बीच जब तक सरकार की ओर से कोई उत्तर न आया तो महारानी लक्ष्मीबाई अपने दत्तक पुत्र के भविष्य के विषय मे चिन्तित हो उठी। उनके 3 दिसम्बर को भेजे गये प्रार्थना पत्र का उत्तर दो मास तक नही आया, तो 16 फरवरी 1854 को उन्होने एक प्रार्थना-पत्र मालकम के माध्यम से पुन गवर्नर जनरल को भेजा, जिसमे उन्होने अपने दत्तक विधान के औचित्य का प्रतिपादन किया था। इसे मालकम ने 28 फरवरी को भेजा। ध्यान देने योग्य है कि अभी तक मालकम ने सदा रानी के अधिकार का विरोध किया था, किन्तु इस

पत्र मे उसने उनके अधिकार को उचित ठहराया था। इस पत्र के भेजे जाने से पूर्व ही डलहौजी अपना निर्णय ले चुका था।

महारानी तथा उनके दरबारी आशा लगाये बैठे थे, किन्तु फिर भी सशय उन्हे चैन नही लेने दे रहा था। इन दिनो महारानी अधिकतर पूजन-अर्चन, पठन-पाठन तथा धार्मिक ग्रन्थो की कथाओ को सुनने मे समय बिता रही थी।

विलय की घोषणा

वस्तुत झासी को अग्रेजी मे विलय की घोषणा तो 27 फरवरी, 1854 के दिन डलहौजी के उपर्युक्त निर्णय के साथ ही हो गयी थी, किन्तु सूचना रानी तक पहुचने मे कुछ समय लग गया। इस निर्णय की सूचना पहले बुन्देलखण्ड के राजनीतिक अभिकर्ता मालकम के पास भेजी गयी। मालकम ने इसे झासी के उप-राजनीतिक अभिकर्ता एलिस के पास भेजा तथा वह इसे लेकर रानी के पास गया।

उस दिन प्रात काल रानी नित्यकर्मो से निवृत्त होकर बैठी ही थी कि तभी उन्हे एलिस के आने की सूचना दी गयी। सूचना मिलते ही उनके मानस मे कई तर्क-वितर्क जन्म लेने लगे। एलिस को दरबार मे बुलाने को कह रानी स्वय भी वहा पहुची। दरबार मे सभी मन्त्री सभासद, मोरोपन्त आदि बैठे हुए सरकारी आदेश सुनने की बडी उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रहे थे। रानी परदे के पीछे बैठ गयी। एलिस को भी सम्मान के साथ बैठाया गया। गम्भीर होकर सहानुभूति पूर्ण स्वर मे वह बोला—

"महारानी साहिबा! मुझे अत्यन्त खेद है कि मै आपको वह शुभ समाचार नही सुना सकता, जिसकी इच्छा लम्बे समय से मेरे मन मे थी तथा जिसे प्राप्त करने के लिए मै अब तक बडी व्याकुलता से प्रतीक्षा कर रहा था। मैं इसके सर्वथा विपरीत सरकारी घोषणा सुनाने के लिए बाध्य हू, जिसे सरकार बहादुर ने आपकी प्रजा के नाम जारी किया है। वह घोषणा इस प्रकार है।"

इसके बाद उसने लिखित घोषणा पढकर सुनाई—

"झासी राज्य की समस्त प्रजा के लिए सरकार इस आज्ञा-पत्र द्वारा यह घोषणा करती है कि 21 नवम्बर 1853 को महाराज गगाधर राव का देहान्त हो गया है। वह महाराज अग्रेजी सरकार के प्रतिनिधि के रूप मे नियुक्त थे, जो स्वतन्त्र शासक कभी नही रहे। उनके पूर्वजो को झासी की सूबेदारी पेशवा से प्राप्त हुई थी, अत वे पेशवाओ के अधीन थे। सन् 1817 मे अग्रेजो से हुई सन्धि मे पेशवा ने झासी प्रान्त के सभी शासनाधिकार हमे दे दिये, तब से अग्रेजी सरकार ही इसकी वास्तविक अधिकारी है। तब से झासी के सिंहासन पर बैठे सभी शासक अग्रेजो के अधीन उनके प्रतिनिधि थे। अग्रेजी सरकार ने अपने किसी भी अधीनस्थ राजा को पुत्र गोद लेने का अधिकार कभी नही दिया। और न कभी ऐसी शर्त ही स्वीकार की कि अधीनस्थ राजा के गोद लिये पुत्र को उसके औरस पुत्र के समान अधिकार प्राप्त होगे।

अत गवर्नर जनरल गगाधर राव के निधन के बाद उनका कोई औरस पुत्र न होने के कारण उनके दत्तक पुत्र को अस्वीकार करते हैं तथा 7 मार्च 1854 की आज्ञा के अनुसार सरकार घोषणा करती है कि झासी राज्य के समस्त क्षेत्र को बुन्देलखण्ड के उपराजनीतिक अभिकर्ता मेजर एलिस के अधीन कर दिया गया है। अत' अब से इस समस्त प्रदेश पर अग्रेजी सरकार का शासन समझा जाएगा तथा झासी राज्य की समस्त प्रजा ब्रिटिश सरकार के अधीन मानी जाएगी। झासी राज्य की प्रजा ध्यान दे कि भविष्य मे वह अग्रेजी राज्य के अधीन रहेगी और अपने सभी कर आदि अग्रेजी सरकार के प्रतिनिधि मेजर एलिस को देगी।"

मैं अपनी झांसी नहीं दूंगी

निश्चय ही इस घोषणा ने रानी लक्ष्मीबाई तथा झासी की प्रजा की इच्छाओं पर पानी फेर दिया। घोषणा सुनते ही रानी मूर्छित होकर गिर पडी। अनेक उपाय करने पर भी जब वहा उपस्थित लोगो ने देखा कि उनकी मूर्छा नही टूट रही है, तो राजघराने के चिकित्सक

को बुलाया गया। उसके उपचार के बाद प्राय एक घण्टे में उनकी मूर्छा टूटी। सभी लोग उन्हे अनेक प्रकार से सान्त्वना देने लगे, किन्तु घोषणा से सभी निराश हो गये थे। मेजर एलिस ने उन्हे सान्त्वना देते हुए कहा—"राजनीतिक अभिकर्ता के आदेशानुसार आपका समुचित सम्मान किया जाएगा और आपके निर्वाह हेतु उदारतापूर्वक व्यवस्था की जाएगी।"

इन शब्दो को सुनते ही महारानी ने गर्जना की—"मै अपनी झासी नही दूगी।"

यद्यपि रानी के इन शब्दो को उस समय उनके भावावेश के उद्‌गार मात्र समझा गया, किन्तु भावी घटनाओ ने सिद्ध कर दिखाया कि ये शब्द कोरे शब्द नही थे, अपितु यह रानी का दृढ निश्चय था, अपनी इस आन का मान रखने के लिए अन्तत उन्होने अपने प्राणो की आहुति दे दी।

किला छोड़ना पड़ा

झासी राज्य का अग्रेजी राज्य मे विलय हो जाने के बाद मेजर मालकम ने गवर्नर जनरल को एक पत्र लिखा, जिसमे महारानी लक्ष्मीबाई के लिए निम्नलिखित सुविधाए देने की सस्तुति की गयी थी—

1 महारानी लक्ष्मीबाई को झासी के कोष से अथवा जहा से वह चाहे पाच हजार रुपये मासिक उनके जीवन पर्यन्त दिये जाए।

2 झासी का राजमहल रहने के लिए उन्हे दे दिया जाए तथा उस पर उन्ही का स्वामित्व माना जाए।

3 महारानी के जीवन-काल मे उनके तथा उनके सेवको के कार्यव्यवहार पर अग्रेजी सरकार के न्यायालयो को विचार करने का अधिकार न हो।

4 स्वर्गीय महाराज गगाधर राव की अन्तिम इच्छा के अनुसार उनके निजी धन मे से राज्य का लेन-देन चुका कर जो कुछ बचे, उस पर तथा उनके निजी वस्त्र-आभूषण आदि पर महारानी का अधिकार

हो। उनके सम्बन्धियो की एक तालिका बनाकर उनकी आजीविका निर्वाह की व्यवस्था की जाए।

गवर्नर जनरल लार्ड डलहौजी ने इन मागो मे प्रथम तीन तो यथावत् मान ली, किन्तु चौथी माग के विषय मे सशोधन करते हुए 25 मार्च, 1854 के अपने पत्र मे मालकम को लिखा—

"भले ही गगाधर राव का दत्तक पुत्र सविधान के अनुसार झासी राज्य का उत्तराधिकारी नही हो सकता, फिर भी उनकी व्यक्तिगत सम्पत्ति तथा राज्य के जवाहरात आदि पर उसी का अधिकार है। अत यह सम्पत्ति महारानी को नहीं दी जा सकती।"

इसी के अनुसार महारानी को उपर्युक्त वृत्तान्तो से अवगत करा दिया गया। झासी के राजनीतिक अभिकर्ता ने झासी के राजकोष से निकालकर 6 लाख रुपये महारानी के पुत्र दामोदर राव के नाम से अग्रेजो के कोष मे जमा कर दिये तथा व्यवस्था कर दी कि यह धन-राशि उसके वयस्क हो जाने पर ब्याज सहित उसे लौटा दी जाए। *राज के सभी हीरे-जवाहरात आदि महारानी को दे दिये गये*।

झासी के पूर्व शासक रामचन्द्र राव की मृत्यु के पश्चात् झासी का राज-परिवार किले मे ही रहता था, किन्तु अब महारानी लक्ष्मीबाई को उसे भी छोडना पड गया। जब सब कुछ चला गया, तो फिर किले मे रहकर क्या करना। यही विचार कर वह एक दूसरे महल में चली गयी।

सैनिकों की सेवाएं समाप्त

झासी विलय के सम्बन्ध मे अग्रेजो का एक तर्क यह भी था कि इससे झासी के लोगो का कल्याण होगा। यह तर्क नितान्त थोथा था। इस प्रकार के विलय से सदा बेरोजगारी, अव्यवस्था आदि ही बढती है। इस विषय मे जान सालिवन ने अपनी पुस्तक 'ए प्ली फार प्रिन्सेज आफ इण्डिया' मे लिखा है—

"जब किसी देशी रियासत की स्वायत्तता का हनन किया जाता है, तो कोई एक अग्रेज कमिश्नर बनकर राजा के आसन पर बैठ जाता

है। उसके तीन-चार साथी उतने ही दर्जन देशी अधिकारियो को पदच्युत कर देते है। और हजारो देशी सैनिको के स्थान पर कुछ सौ सैनिक भरती कर लिये जाते है। प्राचीन समय के दरबार का लोप हो जाता है, व्यापार चौपट हो जाता है, राजधानी नष्ट हो जाती है, लोग कगाल हो जाते है तथा अग्रेजो की बडी उन्नति हो जाती है। अग्रेज स्पज के समान गगा के तटो को, इस भूमि को सोखकर टैक्स नदी के तट पर इगलैंड ले जाते है।"

जान साल्विन के इन शब्दो मे भले ही कुछ भावुकता का पुट हो, भले ही उनकी शैली आलकारिक हो, किन्तु इनमे अत्युक्ति किसी प्रकार नही कही जा सकती। अग्रेजो द्वारा झासी की शासन-सत्ता अपने हाथो मे लेते ही वहा की सेना के सैनिको को छ-छ मास का वेतन देकर उनकी सेवाए समाप्त कर दी गयी। उनके स्थान पर अग्रेजी सेना की नयी भरती की गयी। झासी के किले पर बगाल इन्फेट्री की बारहवी पल्टन नियुक्त कर दी गयी। किले मे कई वर्षों से सचित युद्ध का सामान नष्ट कर दिया गया। पेशवा के समय की तोपे भी नष्ट कर दी गयी।

कहने की आवश्यकता नही कि अपने स्वामिभक्त सैनिको को इस प्रकार अग्रेजो द्वारा सेवा से निकाल दिये जाने से तथा अपने पति के पूर्वजो की पीढियो से सचित युद्ध सामग्री की दुर्गति किये जाने से महारानी लक्ष्मी बाई को असीम वेदना हुई होगी। ऐसी विवशता की स्थिति मे वह कर ही क्या सकती थी।

एक और प्रयत्न

कहा जाता है, 'जब तक सास तब तक आस।' झासी का राज्य अग्रेजी राज्य मे मिला लिया गया था। वहा का कमिश्नर मेजर स्कीन को बना दिया गया था, फिर भी रानी आशावान बनी हुई थी कि कदाचित उन्हे उनकी झासी वापस मिल जाए। सम्भवत उन्हे अग्रेजो की न्यायप्रियता पर कुछ अधिक ही विश्वास था या फिर उन्होने यही सोचा होगा कि प्रयत्न करना तो मनुष्य का कर्तव्य ही है। अत

उन्होने अपने अधिकार के लिए लन्दन के 'कोर्ट आफ डायरेक्टर्स' मे याचिका प्रस्तुत करने का निर्णय लिया। इस कार्य के लिए उन्होने प्रख्यात वकील उमेशचन्द्र बनर्जी को चुना। उन्हे तथा एक अन्य यूरोप निवासी सज्जन को साठ हजार रुपये देकर लन्दन भेजा गया। इन दोनो महानुभावो ने लन्दन जाकर इस सिलसिले मे क्या किया, इस विषय मे कुछ भी ज्ञात नही है। यह भी कहा जाता है कि ये दोनो रुपये डकार गये।

दुर्भाग्य से महारानी लक्ष्मी बाई को इस प्रयत्न मे भी सफलता नही मिली। अन्त मे 2 अगस्त 1854 को 'कोर्ट आफ डायरेक्टर्स' ने भी झासी के अग्रेजी राज्य मे विलय पर अपनी स्वीकृति दे दी तथा उसकी औपचारिक घोषणा भी कर दी।

मां का कर्तव्य

सभी प्रकार से निराशा हो जाने के बाद मनुष्य केवल ईश्वर का ही सहारा समझने लगता है। पति की मृत्यु तथा उसके बाद के घटना-चक्र से कुछ काल के लिए महारानी लक्ष्मीबाई की मानसिक दशा भी कुछ इसी प्रकार की हो गई थी। उनका जीवन उस समय एक धर्म-प्राण महात्मा जैसा हो गया था। वह प्रात काल ब्राह्ममुहूर्त मे उठ जाती, फिर स्नानादि नित्य-कर्म करने के बाद पूजा करती, आठ बजे पूजा से उठने के बाद महल के आगन मे घुडसवारी, व्यायाम आदि करती, ग्यारह बजे पुन स्नान के बाद दान-पुण्य, आदि कर 12 बजे भोजन करती, इसके बाद कुछ देर आराम करती। आराम से उठने के बाद तीन बजे तक वह ग्यारह सौ बार राम नाम लिखकर, उसकी आटे के साथ गोलिया बनाती तथा उन्हे मछलियो को खिलाती। सायकाल से रात्रि आठ बजे तक वह पुराण आदि की कथा सुनती। इसके बाद कुछ देर का समय मिलने वालो के लिए नियत था। इसके बाद वह तीसरी बार नहाती, पूजा करती, प्रसाद लेती तथा फिर सोने के लिए चली जाती। उन दिनो उनके घरेलू कार्य की देख-रेख उनके पिता मोरोपन्त करते थे।

धीरे-धीरे दो वर्ष का समय व्यतीत हो गया। उनका दत्तक पुत्र दामोदर राव सात वर्ष का हो गया था। रानी ने उसका यज्ञोपवीत सस्कार कर देना उचित समझा। इस विषय मे उन्होने अपने पिता तथा अन्य कर्मचारियो से विचार-विमर्श किया। उन लोगो ने परामर्श दिया कि इस कार्य के लिए दामोदर राव के नाम पर जो छ लाख रुपये अग्रेजो के कोष मे जमा है, उनमे से एक लाख रुपये माग लिये जाए। रानी भी इसमे सहमत हो गयी। उनके पूर्व मन्त्री ने पहले ही कह दिया था कि कमिश्नर इस कार्य के लिए रुपये नही देगा, किन्तु रानी ने दृढता के साथ कहा—"वह रुपया हमारा है। हमारी सन्तान के कार्य के लिए रखा गया है। इस पावन एव धार्मिक सस्कार से बढकर और क्या कार्य हो सकता है ? हम अपने भोग-विलास या अन्य किसी कार्य के लिए इसे नही माग रहे है, जो वे इसे न दे ।"

अन्त मे कमिश्नर के लिए उक्त आशय का एक पत्र स्वय रानी ने बोलकर लिखाया। इस पत्र का सक्षिप्त हिन्दी रूपान्तर यहा दिया जा रहा है—

महोदय,

आपको विदित होगा कि हमारे राजकुमार चि० दामोदर गगाधर राव को सातवा वर्ष लग गया है। अत हम चाहते है कि धार्मिक एव कुल-परम्परा तथा वश की मर्यादा के अनुसार उनका यज्ञोपवीत सस्कार कर दिया जाए, जिससे उनकी शिक्षा-दीक्षा भी यथा-समय प्रारम्भ की जा सके तथा वह अपने धार्मिक एव पारिवारिक कृत्यो, यज्ञ आदि मे भी पूरी तरह भाग ले सकें। इस सस्कार के व्यय का अनुमान एक लाख रुपये लगाया गया है, क्योकि सस्कार उनके उच्च राजवश की प्रतिष्ठा तथा मर्यादा के अनुकूल होना नितान्त आवश्यक है। इसी मे उनका सर्वप्रकारेण कल्याण है।

अत राजकुमार के नाम पर अग्रेजी कोष मे जो छ लाख रुपये रखे गए है, उनमे से एक लाख रुपये शीघ्र हमारे पास भिजवाने की कृपा करे, ताकि इस पवित्र सस्कार के लिए अभी से आवश्यक प्रबन्ध किए जा सकें।

आशा है, इस परम आवश्यक कार्य मे आप किसी प्रकार का अनावयश्क विलम्ब नही करेंगे तथा हमारी प्रार्थना यथाशीघ्र स्वीकार कर हमे अनुग्रहीत करेंगे।

आपकी शुभाकाक्षिणी
लक्ष्मीबाई
महारानी झासी

कुछ दिनो की प्रतीक्षा के बाद कमिश्नर का उत्तर आया, जिसमे उसने रुपये देने मे अपनी असमर्थता व्यक्त की थी। इस पत्र का भावार्थ इस प्रकार था—

"आपके पति स्व० गगाधर राव की समस्त व्यक्तिगत सम्पत्ति पर केवल उनके दत्तक पुत्र दामोदर गगाधर राव का ही अधिकार है। उनकी अल्पावस्था को देखते हुए यह धन-राशि उनके वयस्क होने तक अग्रेजी कोष मे सुरक्षित रखी गई है। अत जब तक वह वयस्क नही हो जाते, इसमे से उन्हे या उनके किसी सम्बन्धी को एक पैसा भी नही दिया जा सकता।

अग्रेजी कोष मे उनकी छ लाख रुपयो की धरोहर है। जब वह वयस्क हो जाएगे, तो इसे ब्याज सहित उन्हे लौटा दिया जाएगा। अत, अभी जैसा आप चाहती है, ऐसी कोई व्यवस्था नही की जा सकती।"

इस उत्तर से अन्य सभी लोगो को बडी निराशा हुई, किन्तु महारानी ने हिम्मत नही हारी। उन्होने कमिश्नर को पुन पत्र लिखा—

महोदय,

आपका पत्र प्राप्त हुआ। यह जानकर अपरिमित सन्तोष हुआ कि दामोदर राव के जो रुपये अग्रेजी सरकार के पास धरोहर है, वे उनके वयस्क होने पर ब्याज सहित वापस मिल जाएगे। फिर भी हम आपका यह निर्णय उचित नही समझते कि राजकुमार दामोदर राव के वयस्क होने तक उनके किसी कल्याण-कारक कार्य के लिए उन्हे या उनके किसी सरक्षक को एक पैसा भी नही दिया जा सकता। हा, यह सत्य है कि उन्हे या उनके किसी सम्बन्धी या सरक्षक को किसी ऐसे कार्य के लिए धन न दिया जाए, जो दामोदर राव के हित मे न हो अथवा जिसमे

उस धन के अपव्यय की आशका हो।

आपको विदित होगा कि हिन्दुओ मे, विशेषकर ब्राह्मणो और क्षत्रियो मे यज्ञोपवीत सस्कार एक महत्त्वपूर्ण, पवित्र तथा अनिवार्य सस्कार माना जाता है। इसके बिना किसी बालक की न तो शिक्षा आरम्भ हो सकती है और न ही वह अपने पितरो के इस लोक-तथा परलोक के कल्याण के लिए यज्ञ-श्राद्ध आदि करने का अधिकारी होता है।

इस विशेष स्थिति मे आपका यही कर्तव्य है कि दामोदर राव के पितरो के भावी कल्याण को दृष्टि मे रखकर आप उनके इस सस्कार के लिए हमे अंग्रेजी सरकार से उचित मात्रा मे धन दिलाए, ताकि उनका यह सस्कार उनकी प्रतिष्ठा के अनुरूप सुचारु रूप से सम्पन्न हो सके। हमारे विचार से यह धनराशि एक लाख रुपयो से कम न हो।

यदि किसी कारण से आपकी सरकार को यह धनराशि हमे देना स्वीकार न हो, कम-से-कम दामोदर राव की धरोहर मे से, तो यह हमे अवश्य और शीघ्र मिल जानी चाहिए, ताकि हम अपने इस परम आवश्यक कर्तव्य को शीघ्र पूर्ण कर सके।

यदि आपने हमारी इस प्रार्थना को स्वीकार करने मे किसी प्रकार की असावधानी या अनुचित विलम्ब किया, तो हमे अधिकार होगा कि हम स्व० महाराज द्वारा नियुक्त की गई दामोदर राव की सरक्षिका के रूप मे इस पवित्र सस्कार हेतु कही से भी और किसी भी प्रकार यह धनराशि प्राप्त करे। इस अवस्था मे इसके किसी भी परिणाम का पूर्ण उत्तरदायित्व आपका और आपकी सरकार का होगा।

हमे विश्वास है, हमारे सकेत मात्र पर हमारी प्रजा अपने स्व० महाराज के राजकुमार के इस सस्कार के लिए एक लाख क्या सहर्ष कई लाख रुपये एकत्रित कर देगी, किन्तु हम ऐसा कोई कार्य नही करना चाहती, जिससे आपसे और अंग्रेजी सरकार से हमारे सम्बन्ध और अधिक कटु हो।

हमे पूर्ण विश्वास है, आप पूर्ण विवेक और दूरदर्शिता का परिचय

देकर हमारी उचित प्रार्थना को अवश्य स्वीकार करेंगे तथा हमे इस बात के लिए बाध्य नही करेंगे कि हमे अपनी इच्छा के प्रतिकूल अपने स्व० पति की प्रिय प्रजा के सामने कहे कि हमे इस शुभ कार्य के लिए धन की आवश्यकता है और अंग्रेजी सरकार उसे पूरा करने के लिए सहमत नही है ।

आपके उत्तर की आकांक्षिणी
लक्ष्मीबाई
महारानी झासी

इस पत्र के उत्तर मे कमिश्नर ने लिखा—"यदि आपको राजकुमार दामोदर राव के यज्ञोपवीत सस्कार के लिए एक लाख रुपयो की आवश्यकता है, तो आप झासी के चार सम्भ्रात व्यक्तियो की जमानत पर सरकार से ऋण ले सकती हैं, किन्तु दामोदर राव की धरोहर से धन नही दिया जा सकता ।"

महारानी को मा का अपना कर्तव्य अवश्य पूरा करना था । जमानत देने वालो की भी कोई कमी नही थी । कई राजभक्त सम्भ्रान्त व्यक्ति इसके लिए सहमत हो गए । अत महारानी ने इसी प्रकार एक लाख रुपये प्राप्त किए और अपने कुल की मान-मर्यादा के अनुसार दामोदर राव का यज्ञोपवीत सस्कार धूमधाम से सम्पन्न कराया ।

यहा तक की घटनाओ को वीरागना महारानी लक्ष्मीबाई के जीवन का पूर्व चरित्र कहा जा सकता है । इसके बाद की घटनाओ मे वह एक वीर योद्धा के रूप मे सामने आती है । उनका यही दूसरा रूप इतिहास का एक अविस्मरणीय गौरवमय अध्याय है ।

अध्याय : 4

प्रथम स्वतन्त्रता समर और झांसी

परिस्थितियो वश महारानी लक्ष्मीबाई को पति की मृत्यु के बाद अपने राज्य से हाथ धोने पडे थे, किन्तु उन्होने हार नही मानी थी। सयोग से गगाधर राव की मृत्यु के चौथे ही वर्ष भारत का प्रथम स्वतन्त्रता समर (युद्ध) आरम्भ हो गया, जिसमे महारानी लक्ष्मीबाई की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। सच तो यह है कि इसी युद्ध मे उन्होंने अपनी एक विशेष पहचान बनाई, इसी से वह भारतीय स्वतन्त्रता के इतिहास की एक अप्रतिम व्यक्तित्व बनी।

स्वतन्त्रता-समर के कारण

अपने शासन के एक सौ वर्षों के समय मे अग्रेजो ने जो मनमाने अत्याचार किए, उनके प्रति भारतीयो के आक्रोश की परिणति ही इस सग्राम के रूप मे सामने आई थी। सन् 1857 की इस इतिहास प्रसिद्ध घटना को कुछ केवल एक विद्रोह कहते हैं, तो कुछ के मत मे यह एक क्रांति का प्रारम्भ था। कुछ लोगो के मत मे यह सत्ताच्युत नरेशो का षड्यन्त्र था, तो कुछ इसे भारत का प्रथम स्वाधीनता समर मानते हैं। अधिकतर आधुनिक विद्वानो को यही अन्तिम मत मान्य है।

इस समर के पीछे धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक आदि सभी कारण विद्यमान थे। इन समग्त कारणो पर प्रकाश डालना तो यहा सम्भव नही है, फिर भी कुछ विशेष कारणो का सक्षिप्त परिचय यहा प्रस्तुत किया जा रहा है, जो अधोलिखित हैं—

दत्तक विधान

डलहौजी के गवर्नर जनरल बनकर भारत आते ही अंग्रेजी सरकार की विस्तारवादी अथवा अधिग्रहणवादी नीति का प्रारम्भ हो गया। वह देशी राज्यो को अवसर मिलते ही अंग्रेजी राज्य मे मिला लेने का कट्टर समर्थक था। भारत आते ही उसने कहा था कि वह भारत की भूमि को समतल बनाने आया है। दत्तक विधान हिन्दू धर्म शास्त्र के अनुसार सर्वथा मान्य था, किन्तु उसने इस नियम को मानना भी अस्वीकार कर दिया।

अप्रैल 1848 मे सतारा नरेश आपा साहेब का देहान्त होते ही सतारा पर अधिकार कर लिया गया, क्योंकि आपा साहेब की कोई औरस सन्तान नही थी। नागपुर के भोंसले महाराज की मृत्यु पर (1853) वहा भी ऐसा ही किया गया। राजा ने पुत्र गोद नही लिया था, किन्तु उनकी रानी को यह अधिकार नही दिया गया।

झासी की चर्चा तो पिछले अध्याय मे विस्तार से की जा चुकी है। इससे देशी नरेशो मे एक भय की भावना व्याप्त हो गई थी कि दुर्भाग्य से उनके या उनके भावी वशजो के पुत्रहीन होने पर उनके राज्य का विलय अंग्रेजी सरकार शासित प्रदेशो मे कर लिया जाएगा। अत भारतीय नरेश अंग्रेजो को अपना शत्रु समझने लगे थे।

सन्धियों की अवमानना

पेशवा बाजीराव द्वितीय ने जिस समय अपना पद छोडा था, उस समय अंग्रेजो के साथ हुई उनकी सन्धि मे स्पष्ट लिखा था कि जब तक सूर्य और चन्द्रमा है, तब तक उनके वशजो को आठ लाख रुपये वार्षिक की पेशन मिलती रहेगी, किन्तु 1851 ई० मे पेशवा की मृत्यु होने पर उनके दत्तक पुत्र नाना साहब की यह पेंशन बन्द कर दी गई और कहा गया कि दत्तक पुत्र होने के कारण वह अपने पिता के किसी भी अधिकार का उत्तराधिकारी के रूप मे उपभोग करने की क्षमता नही रखते। जब नाना साहब ने इसके विरुद्ध याचिका प्रस्तुत की, तो डलहौजी ने

लिखा—"पेशवा तीस वर्ष की अवधि मे दो करोड रुपयो से अधिक प्राप्त कर चुके है। इसमे उन्हे बहुत कम व्यय करना पडा। उनका कोई औरस पुत्र नही है। उन्होने अपने परिवार के लिए 28 लाख की सम्पत्ति छोडी है। उनके परिवार से सम्बद्ध लोगो का सरकार की दया अथवा दान पर कोई भी अधिकार नही है। उन्हे जो सम्पत्ति मिली है, उससे प्राप्त होने वाली आय से उनका व्यय बहुत कम है।

नाना साहब ने इसके विरुद्ध लन्दन के 'कोर्ट आफ डायरेक्टर्स' मे भी अपील की, किन्तु कोई सफलता न मिली। स्वाभाविक रूप मे वह अग्रेजो के शत्रु बन गए। यह पेशवा के साथ हुई सन्धि की खुली अवमानना थी। झासी मे महारानी लक्ष्मीबाई और उनके दत्तक पुत्र के साथ भी प्राय यही सब हुआ था। ये घटनाए 1857 के स्वतन्त्रता सग्राम का महत्त्वपूर्ण कारण बनी इसमे कोई सन्देह नही है।

देशी राज्यो पर आघात

उपर्युक्त घटनाओ के साथ ही अनेक अन्य देशी रियासतो पर भी अग्रेजो ने अनेक प्रकार के आघात किए थे। अवध के नवाब से अग्रेजो की मित्रता थी। सन् 1764 मे अग्रेजो ने उसके खर्च पर अवध मे अपनी सेना नियुक्त कर दी और उसे अपने राज्य का पूर्ण स्वामित्व दे दिया। सन् 1801 मे अवध के नवाब से हुई सन्धि के समय अग्रेजो ने उससे बलपूर्वक ऋण लेकर उसे आर्थिक रूप मे खोखला कर दिया। सन् 1847 मे वाजिद अली ने नवाब बनते ही अपनी शक्ति बढानी चाही, तो अग्रेज शकित हो उठे। फलत उसे अपनी सेना बढाने का विचार छोडना पडा। अन्तत 1856 ई० मे अवध पर अग्रेजो ने अधिकार कर लिया।

ऐसा ही नाटक कई अन्य देशी राज्यो मे हुआ। मुगल सम्राट बहादुरशाह जफर भी इस समय सर्वथा अधिकारविहीन हो चुका था। अन्य देशी नरेश भी अग्रेजो के हाथ की कठपुतली भर हो गए थे। सत्ताच्युत देशी नरेशो के वशज अग्रेजो से बदला लेने का अवसर देख रहे थे। इन सबके विस्तार से वर्णन करने की यहा कोई आवश्यकता

नही है । नि सन्देह यह इस सग्राम का एक महत्त्वपूर्ण कारण अदूरदर्शी अग्रेजो की कुटिल और स्वार्थपरायण राजनीति थी । इस विषय मे एक अग्रेज ने स्वय लिखा है-

"हमारे शासन के विरुद्ध एक व्यापक अशान्ति उत्पन्न हो जाने का सबसे बडा कारण यह था कि हमने देशी रियासतो का अन्त करने का जो कार्यक्रम चलाया था, उमसे देशी नरेशों, समाज के प्रमुख नायकों का महान अपमान हुआ था, उनके पैतृक अधिकार छीन लिये गए थे, परम्परा से चले आ रहे करमुक्त भूमि के दान-पत्र रद्द कर उन्हे सरकारी नियन्त्रण मे ले लिया गया था या उनका स्वामित्व उनके वर्तमान स्वामियो तक ही निर्धारित कर दिया गया था । उनके उत्तराधिकारियो को उनकी भूमि के स्वामित्व से वचित कर दिया गया था । जिस किसी जागीरदार या जमीदार का भूमिकर बाकी रह गया, तो उसे अपनी जमीन से वचित होना पडा । भविष्य मे किसी को भी ऐसी जमीदारी या जागीरदारी नही दी गई और सरकार की बडी-से-बडी सेवा करने पर भी किसी को पुरस्कार रूप मे कोई जागीर अथवा सम्मानजनक पद नही दिया गया । हमारी सरकार की इस नीति से उत्साहित होकर अग्रेज अधिकारी देशी नरेशो तथा समाज के अन्य प्रतिष्ठित व्यक्तियो के पारस्परिक विवादो मे परोक्ष अथवा प्रत्यक्ष रूप से हस्तक्षेप करने लगे । इन सब और ऐसे ही कई दूसरे कारणो से हमारे विरुद्ध देशभर मे एक भयकर आतक और प्रबल घृणा व्याप्त हो गई ।"

धार्मिक कारण

जन साधारण मे असन्तोष का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कारण धार्मिक कहा जा सकता है । माना जाता है कि राजनीतिक विस्तार के साथ ही अग्रेज भारत मे ईसाई धर्म का भी पूर्ण शक्ति से प्रचार करने मे सलग्न थे । इसके लिए प्रमाणस्वरूप कई घटनाओ का उल्लेख किया जा सकता है । सन् 1836 मे जब बगाल मे अग्रेजी शिक्षा के विद्यालय स्थापित हुए, तो इस उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए मैकाले ने आशा

व्यक्त की थी कि आने वाले 30 वर्षों मे बगाल मे एक भी मूर्तिपूजक शेष नही रहेगा । अग्रेजो के इस उद्देश्य की ओर सकेत करते हुए वीर सावरकर ने लिखा है—

"अग्रेजो का तो यह विश्वास था कि एक बार हिन्दुस्तान की जनता को उनकी अपनी पाश्चात्य सस्कृति की झलक दिखाई पडे, तो उन्हे अपने धर्म से लज्जा हो जाएगी, वे उसका त्याग करेंगे तथा वेद एव कुरान की अपेक्षा बाइबल को अधिकतम पवित्र मानेंगे । मन्दिर एव मस्जिद मे जाना बन्द कर गिर्जाघरो मे प्रविष्ट होगे ।"

इस धार्मिक कारण ने सैनिक असन्तोष को प्रज्वलित करने मे भी योगदान किया था । कहने का आशय यही है कि अग्रेजो के शासन मे भारतीयो के मानस मे अपने धर्म की रक्षा के प्रति एक असुरक्षा की भावना ने जन्म ले लिया था ।

सैनिक असन्तोष

अग्रेजो के शासन से पूर्व भारतीय नरेशो के शासनकाल मे विजय से लौटने पर सैनिको को अनेक प्रकार से सम्मानित किया जाता था, किन्तु अग्रेजो ने इस परम्परा को बन्द कर दिया था । युद्धो मे आगे उन्हे रहना पडता, किन्तु सुविधाए अग्रेज सैनिको तथा अधिकारियो को दी जाती । इन सबके साथ ही सैनिक असन्तोष का सबसे बडा कारण यह था कि भारतीय सैनिको को भय हो गया था कि अग्रेज इन्हे धर्मच्युत कर रहे है । कहा जाता है कि उस समय सैनिको को जो कारतूस चलाने को दिए जाते थे, उन्हे मुह से काटना पडता था और इन कारतूसो मे गाय तथा सुअर की चर्बी लगी होती थी । यह घटना सत्य थी, अथवा केवल एक अफवाह, इस विषय मे निश्चित रूप से कुछ नही कहा जा सकता, किन्तु जब आज भी कोई हिन्दू गाय के तथा मुसलमान सुअर के मास को छूने की कल्पना भी नही कर सकता, तो आज से प्राय सवा-डेढ सौ वर्ष पूर्व इसकी क्या प्रतिक्रिया हुई होगी, इसका सरलता से अनुमान लगाया जा सकता है । धार्मिक आवेश मे तो मनुष्य वैसे भी विवेक खो बैठता है ।

आर्थिक कारण

आर्थिक कारण भी किसी राजनीतिक अथवा सामाजिक क्रान्ति में अपनी एक महत्त्वपूर्ण भूमिका रखता है। अंग्रेजों के शासन का प्रत्यक्ष प्रभाव राजे-महाराजाओं की तो बात अलग, भारत के सामान्य जन की आर्थिक दशा पर भी पड़ा। करों के भार, अंग्रेजी नौकरशाही से भारतीय किसानों की स्थिति दयनीय हो गई। भारत का कच्चा माल इंग्लैंड भेजा जाता, और वहां से उसका परिवर्तित रूप भारत आता। इससे भारत के अनेक उद्योग धन्धे बन्द हो गए तथा भारत का धन इंग्लैण्ड की तिजोरियां भरने लगा। प्रत्येक पग पर भारतीयों की आर्थिक दशा पर प्रहार किया गया। इससे जन-सामान्य में भी अंग्रेजों के प्रति विद्रोह की भावना जन्म लेने लगी।

विद्रोह की तैयारियां

इन सभी कारणों से भारतीयों में स्वतन्त्र होने की भावना बल पकड़ने लगी। इसमें पदच्युत सत्ता विहीन किए गए भारतीय नरेशों ने सक्रिय भाग लिया। उत्तरी भारत में एक गुप्त संगठन की स्थापना हुई। नाना साहब ने अंग्रेजी शासन को उखाड़ फेंकने का संकल्प लिया। सन् 1856 से कुछ पूर्व उन्होंने इसका प्रचार करने के लिए अपने प्रचारक भेजे। ये प्रचारक दिल्ली, मैसूर, झांसी, अवध आदि सभी स्थानों पर गए। ये सभी पूर्व नरेश और भारतीय सैनिक उनके संकल्प से सहमत हो गए।

उस समय अंग्रेजों का ईरान में युद्ध हो रहा था। अतः मुगल सम्राट् बहादुरशाह जफर, कुंवर सिंह, तात्या टोपे, नाना साहब आदि सभी ने तय किया कि यदि ऐसे समय में भारत में अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह कर दिया जाए, तो सफलता अवश्यम्भावी है। जनता में इसका प्रचार करने के लिए साधुओं, सन्यासियों, फकीरों आदि की सहायता ली गई। ये लोग गांव-गांव घूमकर क्रान्ति का प्रचार करने लगे। इन्होंने लगभग दो वर्ष तक यह प्रचार किया। महिलाओं में इस प्रचार के लिए बहुरूपिये, वैद्यों, तान्त्रिकों, ज्योतिषियों आदि को भेजा गया। मौलवी अहमदशाह का नाम इस प्रचार के लिए आदर से लिया जाने योग्य है। उन्होंने देश

के कई स्थानो पर घूम-घूम कर यह प्रचार कार्य किया। एक स्थान पर एक सभा को सम्बोधित करते हुए उन्होने स्पष्ट शब्दो मे कहा—"अपने धर्म तथा देश की रक्षा करनी है, तो इसके लिए अग्रेजो को मारने के अतिरिक्त कोई मार्ग नही है।"

इस पर राजद्रोह के आरोप मे बन्दी बनाकर बाद मे उन्हे फासी पर लटका दिया गया। सामान्य जनता मे अफवाहो और अन्धविश्वासो का प्रभाव शीघ्र होता है। अत. जनता मे इस बात का प्रचार किया गया कि एक बहुत बडे तपस्वी ने भविष्य वाणी की है—"अग्रेजो के राज्य की स्थापना के ठीक सौ वर्षों बाद उनके शासन का अन्त हो जाएगा।" इसका इतना प्रचार हुआ कि समाचार पत्रो ने भी इसे प्रकाशित किया। इस प्रचार का केन्द्र कानपुर था, जहा नाना साहब का निवास था। अग्रेजो की सेना के भारतीय सैनिको को भी इसमे सम्मिलित कर लिया गया। दिल्ली, मरठ, अलीगढ, बनारस, कानपुर, इलाहाबाद, झासी, अवध आदि सभी स्थानो पर एक साथ क्राति करने का निश्चय कर लिया गया। 23 जून 1857 को अग्रेजी शासन के एक सौ वर्ष पूरे होने वाले थे। अत क्रान्ति आरम्भ करने के लिए सम्भवत 31 मई 1857 का दिन निश्चित किया गया और तैयारिया चलती रही।

सूत्रपात : मंगल पाण्डे का बलिदान

31 मई को रविवार पडता था, अत सेना के सभी अग्रेज चर्च मे चले जाते थे। यही विचार कर यह दिन निश्चित किया गया था, ताकि जब अग्रेज चर्च मे हो तो उन्हे अवसर दिए बिना क्रान्ति का बिगुल बजा दिया जाए, किन्तु सैनिको के अनुचित उत्साह के कारण यह योजना कार्यान्वित नही की जा सकी। बुराहानपुरी (बगाल) की छावनी मे सेना की 16वी टुकडी भी थी। अग्रेजो ने सर्वप्रथम गाय और सुअर की चर्बी मिले कारतूसो का प्रयोग इसी टुकडी से प्रारम्भ करना चाहा। जब इस टुकडी के सैनिको को ये कारतूस दिये गये, तो उन्होने इन्हे चलाना अस्वीकार कर दिया। अत उन सैनिको के शस्त्र धरा लिये

गये। यह घटना फरवरी, 1857 मे ही घट गयी। अंग्रेजो ने समझा इस टुकडी के शस्त्र छीन लेने से अन्य सैनिको पर उनके अनुकूल प्रभाव पडेगा, किन्तु हुआ इसके विपरीत ही, भारतीय सैनिक इस अपमान से तिलमिला उठे और शीघ्र ही प्रतिशोध लेने के लिए उतावले हो गये।

यह समाचार बराकपुर पहुचा तो वहा की सेना के एक सैनिक मंगल पाण्डे क्रोध से भर उठे और अपने साथियो से तुरन्त विद्रोह कर देने का आग्रह करने लगे। इस पर उनके साथियो ने बहुत समझाया कि ऐसा करने से लक्ष्य प्राप्त करने मे बाधा पहुचेगी तथा क्रान्ति के नेता भी इसका समर्थन नही करेंगे, किन्तु मगल पाण्डे इससे सहमत न हुए। 29 मार्च 1857 के दिन ही वह विद्रोह पर उतर आये और अपने साथियो से कहने लगे—"भाइयो, उठो-उठो, बिल्कुल भय न करो। उठो, आओ, आपको अपने धर्म की शपथ है। आओ, हम अपनी स्वतन्त्रता के लिए नीच शत्रुओ पर धावा बोल दे।"

यह देख सार्जेंट मेजर ह्यूसन ने अन्य सैनिको को उन्हे बन्दी बनाने की आज्ञा दी, तो कोई भी सैनिक आगे नही बढा। मगल पाण्डे ने तुरन्त ह्यूसन को गोली मारकर धराशायी कर दिया। तभी लेफ्टीनेंट बाब वहाँ आ पहुचा। मगल पाण्डे ने उसका भी काम तमाम कर दिया। इतने मे कर्नल व्हीलर वहा आया। उसने सैनिको से मगल पाण्डे को बन्दी बनाने का आदेश दिया, किन्तु सैनिको ने उसकी भी अवहेलना कर दी, व्हीलर भाग खडा हुआ। मगल पाण्डे इसका परिणाम अच्छी तरह जानते थे। अत उन्होने आत्महत्या करने के लिए गोली चलायी, किन्तु इससे उनकी मृत्यु नही हुई, वह घायल होकर गिर पडे। फलत उन्हे बन्दी बना लिया गया। बाद मे उन्हे फासी दे दी गयी। जब उनसे उनके अन्य सहयोगियो के नाम बताने को कहा गया, तो उन्होने कहा था—"मै प्राणान्त हो जाने पर भी अपने सहयोगियो के नाम नही बताऊगा।"

इसमे कोई दो मत नही हो सकते कि मगल पाण्डे का यह कार्य भावावेश युक्त था, उनकी इस जल्दबाजी से क्रान्ति की योजना को भारी हानि उठानी पडी, अन्यथा न जाने भारतीय स्वतन्त्रता सग्राम का

इतिहास किस रूप मे होता । जो भी हो, वीर मगल पाण्डे को यह गौरव तो अवश्य प्राप्त है कि उन्होने सर्वप्रथम ऐसा साहस कर दिखाया और स्वाधीनता के लिए अपने प्राणो का बलिदान कर दिया ।

मेरठ और दिल्ली

मगल पाण्डे के बलिदान से अन्य स्थानो पर स्थित भारतीय सैनिको को भी प्रेरणा मिली । अम्बाला मे अग्रेजी सेना का मुख्यालय था । वहा भारतीय सैनिको ने एक अग्रेज सेना अधिकारी का घर जला दिया, किन्तु इससे अधिक वहा कुछ नही हुआ और यह आग भी छिपकर लगायी गयी । इसके बाद मेरठ स्थित सेना ने विद्रोह कर दिया । मेरठ मे इस विद्रोह का बीज किस तिथि को बोया गया, इस विषय मे विभिन्न पुस्तको मे अलग-अलग तिथि लिखी हुई है । श्री शान्तिनारायण ने अपनी पुस्तक 'महारानी झासी' मे तथा श्री पारसनीस दत्तात्रेय बलवन्त लिखित पुस्तक 'झासी की रानी लक्ष्मीबाई' मे यह तिथि 25 अप्रैल 1857 लिखी है, किन्तु वीर सावरकर ने 1857 का स्वतन्त्रता-सग्राम मे यह तिथि 6 मई 1857 दी है ।

मेरठ मे सेना के अश्वारोही दल को उक्त चर्बीयुक्त कारतूस दिये गये, किन्तु 90 मे से केवल 5 सैनिको ने उन्हे छुआ । अन्य सैनिको से जब पुन उनका प्रयोग करने को कहा गया, तो वे छावनी की ओर चले गये । उन सैनिको को बन्दी बनाकर उन पर यूरोपीय पैदल तथा तोपखाने वाली सेना का पहरा लगा दिया गया । बाद मे दस-दस वर्षो के कारावास का दण्ड मिला ।

उसी शाम जब कुछ अन्य भारतीय सैनिक बाजार मे घूम रहे थे, तो गाव की कुछ महिलाओ ने उन्हे ताना दिया—'वाह, तुम्हारे भाई उधर जेलो मे सड रहे है और तुम यहा मक्खिया मारते हुए घूम रहे हो । छि, धिक्कार है तुम्हे !'

इस घटना से उन सैनिको का स्वाभिमान तो जाग पडा । अब उनके लिए 31 मई तक चुप बैठना असम्भव हो गया । उन्होने उसी रात्रि छावनी मे ही एक गुप्त बैठक की, जिसमे अनेक अन्य भारतीय

सैनिको ने भी भाग लिया । अत दिल्ली के लिए सूचना भेज दी गयी—"हम 11 या 12 मई को वहा पहुचेंगे, सब प्रकार से तैयार रहे। अंग्रेजो को इस विषय मे कुछ भी ज्ञात न हो सका। 10 मई 1859 को रविवार के दिन जब अंग्रेज चर्च मे प्रार्थना कर रहे थे और प्रार्थना की घण्टिया बजी, तो सैनिको ने क्रान्ति का शखनाद कर दिया। 'मारो फिरगी को' के नाद से आकाश गूज उठा। सर्वप्रथम वे अपने साथियो को मुक्त कराने जेल की ओर दौडे। अंग्रेज जान बचाने के लिए भाग खडे हुए। जेल तोडकर बन्दी मुक्त कर लिये गये। फिर वह अंग्रेजो के खून के प्यासे होकर दिल्ली की ओर बढ चले।

दिल्ली मे बहादुरशाह जफर 31 मई को प्रतीक्षा कर रहे थे। उन्होने दिल्ली की सेना को किसी प्रकार नियन्त्रण मे रखा था, किन्तु मेरठ मे पहले ही यह सब हो गया। फिर ये सैनिक दिल्ली पहुच गये और दिल्ली मे भी विद्रोह हो गया। बहादुरशाह भारत सम्राट घोषित कर दिये गये। पाच दिन तक सम्पूर्ण दिल्ली क्रान्तिकारियो के नियन्त्रण मे रही, किन्तु कुछ तो सैनिको की जल्दबाजी से, कुछ परिस्थितियो की प्रतिकूलता से अथवा कुछ अन्य कारणो से इसमे सफलता नही मिली। अंग्रेजो ने पुन दिल्ली को अपने अधिकार मे कर लिया। अनेक वीरो को फासी दे दी गयी। बहादुरशाह को देश-निकाला देकर रगून भेज दिया गया, जहा बाद मे उनकी मृत्यु हो गयी। यह विस्तार का विषय है, अत यहा इसकी समग्र चर्चा सम्भव नही है।

प्रसार

विद्रोह की यह अग्नि शीघ्र ही लखनऊ, शाहजहापुर, बरेली, फीरोजपुर, मुरादाबाद आदि मे भी फैल गयी। अलीगढ मे क्रान्ति का प्रचार करने वाले एक ब्राह्मण को 20 मई को फासी दे दी गयी। इस घटना ने सैनिको के हृदयो मे आग मे घी का काम किया। हजारो सैनिक क्रोध मे कहने लगे "अंग्रेजी राज्य की अर्थी निकाल दो।" उन्होने अंग्रेजो को प्राण बचाने के लिए अलीगढ छोड देने की चेतावनी दे दी। अलीगढ मे विद्रोह का समाचार पाते ही 22 मई को इटावा मे भी सैनिको ने विद्रोह कर दिया। अंग्रेज अपना जीवन बचाने के लिए भाग खडे हुए।

नगर मे स्वतन्त्र होने की घोषणा करने के बाद वहा के सैनिक भी दिल्ली को चल पडे। 31 मई को बरेली की छावनी मे भी सेना ने हथियार उठा लिये। यह विद्रोह अत्यन्त सुनियोजित विधि से हुआ था। सैनिको ने अंग्रेजो पर धावा बोल दिया। लेफ्टीनेंट किर्बी, ले० फ्रेजर, सार्जेन्ट बाल्टन, कर्नल ट्रूप, राबर्टसन आदि मारे गए। 32 अंग्रेज सेना अधिकारियो ने नैनीताल भागकर अपने प्राण बचाये। बरेली, शाहजहांपुर, मुरादाबाद, बदायू आदि रूहेलखण्ड के नगरो मे स्वाधीनता की घोषणा होते ही अंग्रेज भाग खडे हुए।

31 मई को आजमगढ स्थित सेना ने विद्रोह कर दिया। वहा के सैनिको ने अंग्रेजो को सुरक्षित निकाल दिया। आजमगढ का समाचार 4 जून को बनारस पहुचा। वहा अंग्रेजो ने भारतीय सैनिको के हथियार रखाने चाहे, तो उन्होंने विद्रोह कर दिया। यहा सिख सैनिको ने भी क्रान्तिकारियो का साथ दिया। बनारस की सिख टुकड़ी के जवानपुर स्थित सिख सैनिको न भी क्रान्तिकारियो का साथ दिया। उन्होने सरकारी कोष लूट लिया। फिर बनारस का घुडसवार दल वहा भी पहुच गया। अंग्रेजो को शहर खाली करने की आज्ञा दे दी गयी। इलाहाबाद मे 6 जून की रात्रि सेना ने विद्रोह किया। 11 जून को अंग्रेज सेना को लेकर इलाहाबाद पहुचा। विद्रोहियो से घमासान युद्ध के बाद वह नगर मे प्रविष्ट हुआ। विद्रोहो को दबाने के बाद अंग्रेजो ने जनता पर अमानवीय अत्याचार किये।

कानपुर मे अंग्रेजी सेना की कई टुकडिया थी, जिनमे तीन हजार भारतीय थे। 15 मई को वहा एक अपूर्व दृश्य देखने मे आया। स्थान-स्थान पर अंग्रेजो के विरोध मे सभाए हो रही थी, सैनिक गुप्त बैठके कर रहे थे। विद्रोह होने की आशका से अंग्रेजो ने लखनऊ से भी सेना मगा ली। 4 जून की रात्रि योजनानुसार विद्रोह हो गया। नाना साहब के सैनिको ने नवाबगज के कोषागार पर तथा विद्रोही सैनिको ने शस्त्रागार पर अपना अधिकार कर लिया।

अवध मे अंग्रेज विद्रोह के भय से आतंकित थे। वहा 30 मई रात्रि नौ बजे विद्रोह प्रारम्भ हुआ। अगले दिन सर हेनरी लारेन्स ने

कुछ राजभक्त सैनिको को लेकर विद्रोहियो पर धावा बोला, किन्तु उसके साथ की घुडसवार टुकडी ने भी विद्रोह कर दिया। सीतापुर मे 27 मई को अनेक अंग्रेजो के घरो मे आग लगा दी गई तथा 3 जून को सैनिको की एक टुकडी ने कोषागार पर अधिकार कर लिया। पहली जून को फर्रुखाबाद मे एक भी अग्रेज शेष न रहा। फैजाबाद मे भयभीत अग्रेजो ने राजा मानसिह की शरण लेकर प्राणरक्षा की। 9 जून को फैजाबाद की स्वतन्त्रता की घोषणा के बाद अवध के पूर्व नवाब वाजिद अली शाह के शासन की घोषणा कर दी गयी। 9 जून को सुल्तानपुर मे तथा 10 जून को मालोनी मे भी विद्रोह हो गया। आगरा मे विद्रोह की इस अग्नि का विस्फोट 5 जुलाई को हुआ। विद्रोही सेना को दबाने के लिए बितौली और भरतपुर के लिए देशी राज्यो की सेना भेजी गयी, किन्तु उन सैनिको ने कह दिया—"भले ही अग्रेजो के विरुद्ध हमारे मन मे विद्रोह की भावना नही है, फिर भी हम अपने देशवासियो के विरुद्ध शस्त्र नही उठाएगे।"

उपर्युक्त वर्णन 1857 ई० के स्वतन्त्रता सग्राम के विस्तार को स्पष्ट करता है। इसका सर्वांगीण वर्णन इस पुस्तक का विषय नही है और इसका परिचय दिए बिना महारानी लक्ष्मीबाई का जीवन-चरित्र भी तो अधूरा ही कहा जाएगा। इस सग्राम की एक विशेष बात यह थी कि यह केवल उत्तरी भारत, वह भी दिल्ली, सयुक्त प्रान्त, झासी तक ही सीमित रहा। दुर्भाग्य से भारतीय वीरो को इसमे सफलता नही मिल सकी। अब हम पुस्तक के मुख्य विषय महारानी लक्ष्मीबाई की इस युद्ध मे भूमिका पर आते है।

झासी

दिल्ली और मेरठ मे विद्रोह के समाचार झासी पहुचे। वहा उस समय बगाल नेटिव इन्फेंट्री की बारहवी पल्टन, इरेग्युलर केवलरी की छावनी तथा एक तोपखाना था। इस समस्त सेना का अधिकारी कप्तान डन्लप था। उसे इस बात का पूर्ण विश्वास था कि झासी पूरी तरह अग्रेजो की समर्थक है तथा उसके अधीनस्थ सैनिक सर्वथा अग्रेज-

भक्त है। इसे एक महान आश्चर्य अथवा अविश्वसनीय सत्य कहना अत्युक्ति नही होगी कि विद्रोह की पूरी तैयारिया हो जाने पर भी झासी बाहर से सर्वथा शान्त दिखाई दे रही थी। झासी के कमिश्नर स्कीन ने 28 मई को नगर की स्थिति के विषय मे अपनी रिपोर्ट मे लिखा है—'झासी स्थित सेना पूरी तरह विश्वास योग्य है। यहा विद्रोह की कोई आशका दिखाई नही देती। उन्हे मेरठ, दिल्ली तथा अ य स्थानो के विद्रोहियो तथा उनके काले कारनामो से हृदय से घृणा है। मुझे यहा किसी भी प्रकार के उपद्रव की तनिक भी आशका नही है। यही नही ओरछा, छतरपुर और अजयगढ के शासक अल्पवयस्क है। बुन्देलखण्ड की अन्य रियासतो की व्यवस्था कर दी गयी है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि हम यहा पूरी तरह सुरक्षित है।'

30 मई की रिपोर्ट मे भी उसने ऐसा ही लिखा है। इसके बाद 3 जून की रिपोर्ट मे लिखा है—'पिछले सोमवार की रात्रि मुझे सूचना मिली कि कुछ ठाकुर कोचगाव पर धावा बोलने वाले है। इसकी सूचना मैने डन्लप को तुरन्त भेज दी तथा दूसरी प्रात आठ बजे कुछ सेना भी भेज दी। सेना के वहा पहुचते ही ठाकुरो ने अपना निश्चय बदल लिया।

कुछ लोगो का कहना है कि चारो ओर विद्रोह फैल चुका है, इस विषय मे मै समझता हू कि झासीवासी सच्चे और विचारो के पक्के है। वे कभी हमारे विरुद्ध कार्य नही करेगे।

झासी बाहर से पूरी तरह शान्त थी, अग्रेज महारानी की ओर से निश्चिन्त थे। वे समझते थे कि पति की मृत्यु के बाद उन्होने परिस्थितियो से समझौता कर लिया है, किन्तु 4 जून 1857 को वहा भी सहसा विद्रोह हो गया। भारतीय सेना की सातवी पैदल पलटन के एक हवलदार ने अपने कुछ सहयोगियो को लेकर स्टार फोर्ट मे प्रवेश कर वहा से युद्ध का सभी सामान अपने अधिकार मे ले लिया। समाचार मिलते ही शेष सेना के साथ कप्तान डन्लप वहा पहुचा, किन्तु विद्रोहियो ने युद्ध सामग्री के साथ ही कोष पर भी अधिकार कर लिया था और वहा के पहरेदार भी उन्ही से आ मिले थे। स्थिति की

गम्भीरता को देखते हुए शहर के सभी अंग्रेजो ने कमिश्नर के कहने पर किले मे शरण ले ली।

किले का घेरा

5 जून की प्रात स्कीन और गार्डन डिप्टी कमिश्नर डन्लप से मिलने छावनी पहुचे। इसके बाद वे कुछ गोपनीय बाते करने किले मे चले गए। वहा से डन्लप पहले डाकघर गया। वहा डाक देने के बाद टेलर के साथ परेड मे आया, तो बारहवी पैदल पल्टन के सैनिको ने गोली मारकर उसकी हत्या कर दी। इसके बाद आनन्द से नाचते हुए उन्होने कई अंग्रेजो को मार डाला। लगभग पैंतालीस अंग्रेज अधिकारी प्राण बचाने के लिए किले मे भाग गए। किले मे स्कीन ने सुरक्षा की पूरी व्यवस्था कर ली। उसके द्वार अच्छी तरह बन्द कर दिए तथा सभी को बन्दूके आदि सुरक्षा सामग्री दे दी गयी। छावनी मे मनमानी करने के बाद विद्रोही किले पर पहुच गए। अन्दर से अंग्रेजो ने उन्हे हटाने का भरसक प्रयत्न किया, किन्तु उन्हे सफलता नही मिली। कैसी विडम्बना की बात है कि मृत्यु को सिर पर मडराती देख स्कीन ने महारानी लक्ष्मीबाई से सहायता लेने का विचार किया। इसके लिए उसने स्काक और पर्सेल ब्रदर्स को महारानी के पास भेजा, जिन्हे विद्रोहियो ने बीच मे ही मार डाला।

इसके बाद दूसरे दिन स्कीन ने नागोद और ग्वालियर से सेना मागने के लिए पत्र लिखे, उसके दुर्भाग्य से सेना नही आयी। इसी दिन विद्रोहियो ने अपने पूरे वेग से किले पर धावा बोला। दोनो ओर से भयकर गोलाबारी हुई, किन्तु इस दिन भी विद्रोहियो को सफलता नही मिली। विद्रोही किसी भी मूल्य पर किले पर अधिकार करना चाहते थे, परन्तु उन्हे सफलता नही मिल रही थी। जिस समय झासी के उप सर्वेयर लेफ्टीनेट पाविस किले मे गया, वह अपने कुछ परम विश्वासपात्र भारतीय सैनिको को भी साथ ले गया था। अपने देश की स्वाधीनता के लिए प्रयत्नशील विद्रोहियो को सफलता न मिलती देख उन सैनिको को विद्रोही सैनिको से सहानुभूति हो गयी, अत. वे

बाहर खडे घेरा डाले विद्रोहियो को किले मे आने का गुप्त मार्ग बताने का प्रयत्न करने लगे । उनके इस कार्य से किले के अन्दर स्थित अग्रेज परिचित हो गये । उन्हे अन्दर लाने के लिए उन्होने पाविस से भला-बुरा कहा । पाविस न उन सैनिको को ऐसा न करने को कहा, इस पर वे खुले रूप मे विद्रोह पर उतर आए, उन्होने पाविस की हत्या कर दी ।

इस बीच बाहर से विद्रोही किले मे प्रवेश की प्राणार्पण से चेष्टा कर रहे थे । उनका दवाव निरन्तर बढता जा रहा था । अन्दर से भी गोलाबारी हो रही थी । गार्डन किले की खिडकियो से बाहर को गोली चलाता जा रहा था । उसे सभी विद्रोही जानने थे । तभी एक विद्रोही न उस पर तीर चलाया । निशाना अचूक था, तीर सीधे गार्डन को लगा और उसकी मृत्यु हो गयी । किले मे हाहाकार मच गया । अग्रेज भयभीत हो गये । उनके दुर्भाग्य से उनकी युद्ध सामग्री भी समाप्त हो गयी । इन विद्रोहियो का नेतृत्व काले खा और अहमद हुसेन कर रहे थे । उनकी सूझ-बूझ से किले का बहुत बडा भाग उनके अधिकार मे आ गया था ।

अग्रेज प्राणरक्षा के लिए सन्धि करने का विचार करने लगे । 8 जून को विद्रोहियो के नेता किले के द्वार पर पहुच गये । उन्होने हकीम सुले मुहम्मद नामक नगर के एक सम्भ्रान्त व्यक्ति को स्कीन के पास भेजा । स्कीन ने उनसे प्रार्थना की कि उन्हे सुरक्षित सागर जाने दिया जाए । हकीम सुले मुहम्मद न कुरान की शपथ लेकर कहा कि वे हथियार रख दे, उन्हे किसी प्रकार का कष्ट नही पहुचाया जाएगा । अत अग्रेजो ने वैसा ही किया और किले से बाहर निकल आए । बाहर आते ही उन्हे बन्दी बना लिया गया और फिर शहर मे घुमाते हुए जोगन बाग की ओर ले जाया गया, तभी मार्ग मे एक घुडसवार ने उन्हे रोक लिया, जो काले खा का सन्देश लाया था कि बन्दी बनाए गये अग्रेजो की हत्या कर दी जाये । इस सन्देश के प्राप्त होते ही झासी जेल के दरोगा बक्शीश अली ने सर्व प्रथम तलवार से स्कीन का सिर धड से अलग कर दिया । यह देखते ही अन्य विद्रोही

भी बन्दी अग्रेजो पर टूट पडे और देखते-ही-देखते सभी को मार डाला।

इस हत्याकाण्ड मे कुल कितने अग्रेज मारे गये, इस विषय मे निश्चित रूप से कुछ भी ज्ञात नही है। कही यह सख्या 60 है, तो कही 67 और कही 76 बताई जाती है, तो कुछ लोगो न इस काण्ड मे मृतको की कुल सख्या 114 बताई है।

महारानी और उक्त घटना

इस घटना के औचित्य-अनौचित्य पर विवाद हो सकता है। जहा आदर्श को महत्त्व देने वाले लोग इसे एक अमानवीय कृत्य और विश्वासघात की सज्ञा देगे, वही 'युद्ध और प्रेम मे सब उचित है' के समर्थक इसके पक्ष मे अपना मत देगे। जो भी हो, हमारी चरित-नायिका महारानी लक्ष्मीबाई का इस घटना से कोई सम्बन्ध नही था। यही नही, महारानी के जीवन के अनेक लेखको का यह भी मानना है कि महारानी इस सग्राम मे भाग ही नही लेना चाहती थी, यद्यपि अनेक इतिहासकारो का मानना है कि महारानी प्रारम्भ से ही क्रान्ति के नेताओ के सम्पर्क मे आ चुकी थी, किन्तु इस विषय मे स्पष्ट प्रमाणो का अभाव है। श्री दत्तात्रेय बलवन्त पारसनीस की पुस्तक 'झासी की रानी लक्ष्मीबाई' को विद्वानो ने प्रामाणिक स्वीकार किया है। इसके अनुसार भी प्रथम मत ही सही है।

अनेक पाश्चात्य लेखको का मत है कि झासी के विद्रोह से उनका (महारानी) सम्बन्ध आरम्भ से ही था और अग्रेजो की हत्याओ मे भी उनका हाथ था। राबर्ट माण्टगोमरी ने अपनी पुस्तक 'भारतीय साम्राज्य' मे लिखा है—'वह मूर्ति-पूजक थी, अपराधो को क्षमा करना उनके धर्म मे था ही नही। दत्तक और उत्तराधिकार सम्बन्धी हिन्दू-धर्मशास्त्र के नियमो की अवमानना से वह कुपित थी। इसलिए लिग एव अवस्था का विचार किए बिना वह महान शक्तिशाली सरकार से युद्ध करने पर उतर आयी। उन्हे इस बात का ज्ञान था कि इस कार्य का परिणाम अपने प्राणो से हाथ धोना होगा।'

माण्ट गोमरी का यह कथन पूर्वाग्रहयुक्त तथा पक्षपातपूर्ण है। कोई भी निष्पक्ष विचारक इसे थोथा तर्क ही कहेगा।

महारानी पहले ही क्रान्तिकारियो से मिल गयी थी, यही मानते हुए एक अन्य अग्रेज लेखक मेलिसन ने लिखा है—

"ब्रिटिश सरकार ने महारानी के क्रोध और उनके द्वारा की गयी शिकायतो की परवाह नही की इसीलिए उन्होने यह अनुचित कार्य किया, अपनी मान-हानि के कारण वह इस नीचता पर उतर आयी। जिस समय सरकार ने झासी राज्य का अधिग्रहण किया, महारानी को पाच हजार रु० मासिक पेशन निश्चित की गयी। पहले वे इस पर सहमत न हुईं और फिर स्वीकार कर लिया। इस बात से उनके विचारो का सहज अनुमान लगाया जा सकता है कि जब उनसे कहा गया कि इस पेशन से उन्हे अपने स्व० पति का ऋण भी चुकाना होगा, तो उन पर क्या बीती होगी, तब वह अनेक शिकायतें करने लगी, जैसे कि हिन्दू बस्तियो मे गौहत्या की जाती है, हिन्दू मन्दिरो के नाम पर पूर्व नरेशो द्वारा दिये गये गाव जब्त कर लिये गये है आदि। इससे प्रजा में भारी असन्तोष व्याप्त हो गया है। इस सब पर रानी ने रोष प्रकट किया। सबसे बडा दुःख इन्हे अग्रेजो द्वारा किये गये अपमान का था। अत सन् 1857 के आरम्भ मे जब विद्रोह के तीव्र सकेत मिलने लगे, तो हमारे भारतीय सैनिको के हृदय मे अग्रेजो के प्रति प्रबल घृणा का भाव प्रकट होने लगा। इस पर महारानी ने इस सबका सधन्यवाद स्वागत किया और स्वाभाविक रूप मे इसका पूरा लाभ उठाया।"

ये शब्द भी लेखक की महारानी के प्रति घृणा भावना का ही परिचय देते हैं। महारानी ने पहले पेशन लेना अस्वीकार किया और उनके पति पर ऋण चढा था, जिसे उन्हे चुकाना पडा—ये सब बाते बेसिर-पैर की लगती हैं, क्योकि इसका कोई भी प्रमाण नही मिला है। भारतीय इतिहासकारो ने इन सब बातो का प्रबल खण्डन किया है। उनका तो यह भी मानना है कि महारानी लक्ष्मीबाई ने अग्रेजो से कोई पेशन ही नही ली थी। उपर्युक्त लेखक के शब्दो की विवेचना करते हुए श्री पारसनीस ने लिखा है—

पेशन और लक्ष्मीबाई के पति के ऋण के विषय मे जो बातें ऊपर लिखी गयी है, वे बिलकुल निराधार है, उनमे सत्य का कुछ भी अश नही है। लक्ष्मीबाई ने अग्रेजो की दी हुई पेंशन को कभी स्वीकार नही किया और न उनके पति पर एक पैसे का भी ऋण था। यह बात भी ध्यान मे रखने योग्य है कि इस कथन का प्रत्यक्ष प्रमाण कुछ भी नही दिया गया है कि जब झासी मे बलवा हुआ, तब लक्ष्मीबाई अपना बदला चुकाने और अपने क्रोध को शान्त करने के लिए विद्रोहियो मे शामिल हुई थी। इसी प्रकार जब अग्रेज ग्रन्थकारो की प्रत्येक बात की जाच की जाती है, तब यही बोध होता है कि उन सब इतिहासो के सत्य होने पर जो दोष आरोपित किये गये है, वे सप्रमाण नही है। हा, इसमे सन्देह नहीं कि उस समय की बहुत-सी बातो का सम्बन्ध बलवे से है, परन्तु जब सब प्रमाणो का अभाव है, तब केवल आनुषगिक बातो पर जोर देकर तत्कालीन न्याय से उन बातो का सम्बन्ध लक्ष्मीबाई से लगाना और उन्हे झासी मे बलवा करने का दोषी ठहराना सत्य और न्यायसगत नही हो सकता। जो प्रमाण मिलते है, उनसे यही जाना जाता है कि लक्ष्मीबाई के झासी बलवे मे शामिल नही थी। केवल इतना ही नही, किन्तु यह भी विदित हो जाएगा कि लक्ष्मीबाई ने उस भयानक और विकट समय मे भी अग्रेजो की सहायता की थी।"

3 जून तक की कमिश्नर की रिपोर्टों से भी यही सिद्ध होता है कि उसे महारानी लक्ष्मीबाई पर किसी प्रकार का सन्देह नही था। सेना मे विद्रोह भावना दिखाई देने पर कप्तान गार्डन तथा कुछ अन्य अंग्रेज महारानी के पास गये और उनसे किसी भी विपत्ति के आने पर रक्षा की प्रार्थना की। पर इस पर महारानी ने उन्हे आश्वस्त करते हुए कहा था—"इस समय न तो हमारे पास युद्ध सामग्री है और न सेना ही, फिर भी जहा तक हो सकेगा, हम आपकी सहायता करने मे कोई कमी नही करेंगे।"

4 जून को गार्डन पुन उनके पास गया और उसने प्रार्थना की—"इस समय हम सबके प्राण सकट मे हैं। हम तो पुरुष हैं, हमे अपनी कोई चिन्ता नही, किन्तु हमारे बच्चो और महिलाओ का क्या होगा ?

अत आप उन्हे अपने महल मे आश्रय दे दीजिए।"

महारानी ने उसकी यह बात मान ली, अत कई अग्रेज महिलाए अपने बच्चो को लेकर उनके महल मे आ गयी। कहा जाता है कि जब अग्रेज किले मे घिर गये थे, तब भी महारानी गुप्त रूप मे उनकी सहायता करती रही। इस बीच उन्होने किले मे अग्रेजो के लिए बराबर खाना भी भेजा था। झासी के पूर्व कथित हत्याकाण्ड मे मार्टिन नामक एक अग्रेज किसी प्रकार बच गया था। उसने 20 अगस्त, 1889 को आगरे से महारानी के दत्तक पुत्र दामोदर राव को एक पत्र लिखा था। उसका यह पत्र महारानी के इस विद्रोह मे सम्मिलित न होने का सबसे बडा प्रमाण माना जाएगा। इस विषय मे उसने लिखा था—

"आपकी मा के साथ अत्यन्त क्रूरता और अन्यायपूर्ण व्यवहार हुआ है। उनके विषय मे जो सत्य वृत्तान्त मै जानता हू, उसे अन्य कोई नही जानता। सन् 1857 ई० के जून मास मे झासी मे यूरोपीयो की जो हत्या हुई थी, उससे उस बेचारी का कोई सम्बन्ध नही था। यही नही, जब अग्रेज किले मे चले गये, तो उन्होने दो दिन तक उन्हे भोजन भी दिया था। उन्होने हमारी सहायता हेतु 100 सशस्त्र सैनिक करेरा से मगवाकर किले मे भेज दिए। हमने उन सैनिको को दिन भर किले मे रखकर शाम को वापस भेज दिया। इसी के बाद महारानी लक्ष्मीबाई ने मेजर स्कीन तथा कप्तान गार्डन को परामर्श दिया कि आप लोग यहा से भागकर दतिया के राजा के आश्रय मे चले जाए, किन्तु उस समय उन लोगो ने ऐसा नही किया। अन्त मे हमारी ही सेना (विद्रोही) ने उन सबकी हत्या कर दी।"

प्रसिद्ध इतिहासकार 'के' ने भी महारानी को अब तक के विद्रोह से सर्वथा असम्बद्ध माना है। इस विषय मे उसने लिखा है—

"मुझे प्रबल प्रमाण के साथ यह ज्ञात हुआ कि इस हत्याकाण्ड के समय महारानी का एक भी सेवक वहा पर विद्यमान नही था। यह कृत्य हमारे ही पुराने अनुचरो का लगता है। इरेग्युलरी केवलरी ने हत्या का आदेश दिया और हमारा जेल-दरोगा हत्यारो का मुखिया था।"

इनके साथ ही उस समय विद्रोहियो द्वारा महारानी के साथ किए गए व्यवहार से भी यही लगता है कि उनका उनसे कोई सम्बन्ध नही था। इस हत्याकाण्ड के बाद विद्रोहियो ने महारानी का महल भी घेर लिया तथा महारानी के पास सन्देश भेजा गया—"हम लोग दिल्ली जाना चाहते हैं। हमे अपने व्यय के लिए तीन लाख रुपये दीजिए, अन्यथा आपका महल तोप से उडा दिया जाएगा।" इससे महल के सभी लोग काफी चिन्तित हुए। इस पर महारानी ने विद्रोहियो के पास सूचना भेजी—"इस समय हमारा समस्त राज्य अग्रेजो के अधिकार मे है। हमारे पास धन का अभाव है। ऐसी दशा मे आपका हमे दुखी करना आपको शोभा नही देता।"

विद्रोहियो को या तो महारानी की बातो पर विश्वास नही हुआ, या फिर उनका विवेक ही नष्ट हो गया था। उन्होने महारानी की बात नही मानी। अन्तत इस विपत्ति से छुटकारा पाने के लिए महारानी ने अपने एक लाख रुपयो के आभूषण उन्हे दे दिए। इससे विद्रोही प्रसन्न हो गए तथा "खल्क खुदा का, मुल्क बादशाह का, अमल महारानी लक्ष्मीबाई का" कहते हुए दिल्ली को चल पडे।

झांसी की कार्यवाहक प्रशासिका

इस समय झासी अग्रेजो से शून्य हो गयी थी। विद्रोहियो ने भी प्रशासन की व्यवस्था पर ध्यान नही दिया। अत झासी मे अराजकता की स्थिति उत्पन्न हो गयी थी। इस स्थिति का समाधान करना महारानी ने अपना नैतिक कर्तव्य समझा। अत उन्होने उस समय तक सरकारी पदो पर कार्य कर रहे भारतीयो को बुलाया। इन लोगो मे राजस्व विभाग के रिश्तेदार एहसान अली, फौजदारी विभाग के रिश्तेदार गोपाल राव लघाटे तथा अन्य विभागो के लोग थे। आपसी विचार विमर्श के बाद उन लोगो ने महारानी को परामर्श दिया कि अब तक सागर मे विद्रोह नही हुआ है। उन्हे ऐसी स्थिति से अच्छी तरह सावधान रहने के लिए कह देना चाहिए, ताकि वे अच्छी तरह अपनी सुरक्षा व्यवस्था कर ले, साथ ही उनसे यह भी पूछ लेना चाहिए कि इस समय

झासी की क्या व्यवस्था की जाए।

महारानी उनके इस प्रस्ताव से सहमत हो गयी। सागर के कमिश-नर के पास इस आशय का पत्र भेज दिया गया। इसी के परिणामस्वरूप अग्रेजो ने सागर मे पूरी व्यवस्था कर ली, जिससे वहा विद्रोह नही हुआ। महारानी की इस सदाशयता से प्रभावित होकर झासी के कमिश्नर ने उनका आभार मानते हुए उन्हे लिखा—'जब तक झासी का कार्यभार सभालने के लिए कोई अनुभवी अधिकारी नही आता, तब तक प्रबन्ध आप ही करती रहे।"

अत कुछ काल के लिए पुन महारानी लक्ष्मीबाई झासी की कार्य-वाहक ही सही प्रशासिका बन गयी। वह चतुर और बुद्धिमान नारी थी, किन्तु प्रशासन का उन्हें कोई अनुभव नही था। उनके पति के शासन-काल के सभी अनुभवी अधिकारी राज्य के विलय के बाद झासी से चले गए थे, केवल उनके पिता तथा दो-चार गिने-चुने व्यक्ति उनके पास रह गए थे, किन्तु उन्हे भी प्रशासन का कोई अनुभव नही था। अत महारानी प्रशासन मे जो सुधार चाहती थी, जिस प्रकार कार्य करना चाहती थी, वह नही हो पा रहा था। इस विषय मे श्री पारसनीस ने लिखा है—

'साराश यह है कि शुद्ध हेतु के अनुसार काम करने वाले कोई अच्छे आदमी उनके पास नही थे। उस समय झासी दरबार मे कुछ तो ओरछा आदि देशी रियासतो से आए हुए राजद्रोही, अनुभवहीन और स्वार्थी लोग थे और कुछ महारानी लक्ष्मीबाई के रिश्तेदार थे, जिन्हे राज्य-प्रबन्ध की जवाबदेही और जिम्मेदारी का कुछ भी ज्ञान न था। लक्ष्मीबाई के मन मे यही विश्वास था कि मेरी इच्छा और आज्ञा के अनुसार दरबार लोग अग्रेज सरकार को पत्र आदि भेजते होगे परन्तु जब हम उस समय दरबारियो की स्थिति का विचार करते है, तब यही कहना पडता है कि लक्ष्मीबाई की इच्छा और आज्ञा के अनुसार कोई कार्यवाही ठीक-ठीक नही होती थी। इसमे सन्देह नही कि लक्ष्मीबाई ने कई बार अंग्रेज अफसरो को खरीते भेजकर अपनी मित्रता, सद्व्यवहार और शुद्ध हृदय का परिचय दिलाने का बहुत उद्योग किया था। उन्होने अपने मन्त्रियो से कई बार कहा था कि अग्रेज अफसरो को पत्र द्वारा इस

बात की सूचना दी जाए कि मैं अग्रेजो की ही आज्ञा से झासी राज्य का प्रबन्ध कर रही हू।"

इस विद्रोह के बाद कप्तान पिग झासी का कमिश्नर बनाया गया था। उसने भी महारानी लक्ष्मीबाई के इस विचार की पुष्टि करते हुए लिखा है—

"विश्वस्त सूत्रो से इस बात का प्रमाण मिला कि महारानी लक्ष्मीबाई हमारी सरकार से मित्रता बनाए रखने के लिए प्रयत्नशील रही। उन्होने उस समय जबलपुर के कमिश्नर और अन्य अग्रेज अधिकारियो को पत्र लिखकर अग्रेजो की हत्या के सम्बन्ध मे खेद प्रकट किया तथा यह भी लिखा कि मेरा उस जघन्य कृत्य से कोई सम्बन्ध नही है। उन्होने सरकार का आभार मानते हुए स्पष्ट लिखा कि मैने उसी समय तक झासी का कार्यभार लिया है जब तक यहा की समस्त व्यवस्था अग्रेज न सभाल ले।"

इसके अतिरिक्त मार्टिन ने भी रानी को सर्वथा निर्दोष माना है। ध्यान देने योग्य तथ्य यह है कि मार्टिन ही वह व्यक्ति था, जिसने महारानी के पत्र जबलपुर आदि के अग्रेजो के पास पहुचाये थे। वह लिखता है –

"महारानी ने जबलपुर मे कर्नल अर्सकिन के पास तथा आगरे के चीफ कमिश्नर कर्नल फ्रेजर के पास भी पत्र भेजे। कर्नल फ्रेजर को मैंने स्वय उनका पत्र दिया, जिससे महारानी के शब्दो पर कुछ विचार किया जा सके, परन्तु उस समय तो 'झासी' सभी के लिए एक अप्रिय शब्द बना हुआ था। अत कुछ भी सुने बिना वह दोषी सिद्ध कर दी गयी।"

कुछ विपरीत तथ्य

यद्यपि श्री पारसनीस का यही मानना है कि महारानी लक्ष्मीबाई के हृदय मे अग्रेजो के प्रति कोई घृणा नही थी। सन् 1857 के विद्रोह मे उन्होने अग्रेजो की पूरी सहायता की थी। उनके इस मत की चर्चा ऊपर कई बार हो चुकी है, किन्तु महारानी की जीवनी के एक अन्य

लेखक श्री शान्ति नारायण ने अपनी पुस्तक 'महारानी झासी' मे एक तथ्य इसके विपरीत भी दिया है। उन्होने लिखा है कि महारानी ने किसी भी भावी विपत्ति का सामना करने के लिए इस काल मे एक आयुध कारखाना भी खोला था, उन्ही के शब्दो मे—

"प्रदेश की आर्थिक उन्नति के लिए उन्होंने स्थान-स्थान पर सब प्रकार के कारखाने भी खुलवाकर, उनमे भाति-भाति का माल भी तैयार कराना प्रारम्भ कर दिया और अपनी सैनिक शक्ति को सुदृढ करने के लिए गोला-बारूद आदि युद्ध की सामग्री की तैयारी की ओर भी पूरा-पूरा ध्यान दिया। जिससे कोई कठिन समय आ पडने पर इन पदार्थों के लिए उन्हे औरो की कृपा पर निर्भर न रहना पडे।"

यद्यपि लेखक ने इस तथ्य का स्रोत नही बताया है, फिर भी यदि यह सत्य है, तो कई अनुत्तरित प्रश्न स्वत उत्पन्न हो जाते है, जैसे क्या महारानी लक्ष्मीबाई की अग्रेजो के साथ उपर्युक्त सहानुभूति उनकी कुशल राजनीतिज्ञता का परिचायक थी ? क्या इस क्रान्ति के कर्णधारो से उनका सम्पर्क पहले मे बना हुआ था ? उन्होने यह आयुध कारखाना क्यो लगाया ? जबकि उन्होने अपने आपको उस समय केवल एक कार्यवाहक प्रशासिका स्वीकार किया है ? यदि वह अपनी झासी का मोह वास्तव मे छोड चुकी थी, तो अग्रेजो ने उन्हे दोषी मानने की मूर्खता क्यो की ? इन प्रश्नो का उत्तर हम पाठको के अनुमान पर छोड देते है। हा, हमे यह नही भूलना चाहिए कि लिखित इतिहास समग्र रूप मे सत्य ही हो यह कोई आवश्यक नही है। वर्तमान समय मे भी राजनीतिक विषयो मे रुचि रखने वाले तथा राजनीति के अध्येता इस सत्य से परिचित ही होगे।

इन सब बातो का विचार करते हुए उन लोगो का मत भी सत्य जान पडता है, जो महारानी लक्ष्मीबाई को 1857 के स्वतन्त्रता समर मे प्रारम्भ से ही सम्बद्ध मानते थे। हमे यह नही भूलना चाहिए कि नाना साहब इस समर के मुख्य सेनापतियो मे अनन्यतम थे और लक्ष्मीबाई उनकी मुह बोली बहन थी। उनका बचपन साथ-साथ बीता था। फिर यह कैसे कहा जा सकता है कि जब नाना साहब ने सभी

पदच्युत शासकों से सम्पर्क किया, तो उन्होंने महारानी लक्ष्मीबाई को छोड़ दिया होगा ? क्या महारानी लक्ष्मीबाई इतनी शीघ्र अंग्रेजो से हुए अपने अपमान को भूल गयी होगी ? इन सब बातो पर विचार करते हुए श्री पारसनीस के निम्नलिखित शब्दो की सत्यता पर सन्देह होने लगता है—

"यह हम लोगो के दुर्भाग्य की बात है कि उस समय के अंग्रेज अफसरो से बिना कुछ समझे-बूझे और बिना कुछ पूछताछ किये ही एक हिन्दू राजघराने की अबला स्त्री को, जो सदा ब्रिटिश सरकार से स्नेह रखने का यत्न करती थी, दुष्ट हत्यारो और बागियो की पंक्ति मे बैठा दिया। इसी मिथ्या भ्रम के वश मे होकर अंग्रेजो ने निरप-राधिनी लक्ष्मी बाई के साथ घोर संग्राम करने का निश्चय किया। जब हम इस बात पर ध्यान देते है कि महारानी लक्ष्मीबाई अंग्रेजो के विरुद्ध नही थी, किन्तु वे अंग्रेजो की ही आज्ञा से अंग्रेजो के ही लिए झासी के राज्य का प्रबन्ध कर रही थी, और इस बात की सूचना भी वे समय-समय पर पत्र लिखवा कर सरकार को दे दिया करती थी, तो भी उनकी सदिच्छा फलीभूत न हुई, उनके शुद्ध हृदय और सरल व्यवहार का परिचय अंग्रेज सरकार को न मिला और अन्त मे प्रबल अंग्रेजो से युद्ध करना पडा। तब यही कहा जा सकता है कि दैव की गति विलक्षण है, भावी बलवान है।"

सदाशिवराव नारायण से युद्ध

अब झासी पर महारानी लक्ष्मीबाई का नियन्त्रण था। उन्होंने कुछ सेना भी रख ली थी। जिस समय गंगाधर राव का निधन हुआ और महारानी अपने दत्तक पुत्र को मान्यता दिलाने के लिए प्रयत्न कर रही थी, उस समय झासी के राजसिंहासन पर अपना अधिकार सिद्ध करने के लिए सदाशिव नारायण ने भी दावा किया था और मालकम ने उसके अधिकार की संस्तुति भी की थी। इसका उल्लेख गंगाधर राव की मृत्यु के बाद के प्रसंग मे किया जा चुका है। उसी सदाशिव नारायण ने उचित अवसर समझकर झासी पर अधिकार

करने के लिए 13 जून 1857 को झासी से प्राय 21 कि० मीटर दूर करेरा के किले पर आक्रमण कर दिया। इस आक्रमण मे उसे सफलता मिली। वहा से अग्रेजो के थानेदार तथा तहसीलदार को भगाकर उसने किले पर अधिकार कर लिया। इसके बाद उसने आस-पास के लोगो से बलपूर्वक धन एकत्र किया और 'महाराज सदाशिव राव नारायण' नाम से अपना राज्याभिषेक करा लिया। इसके साथ ही उसने पुन स्वय को झासी राज्य का वास्तविक उत्तराधिकारी कहना प्रारम्भ कर दिया। उसने अपना इस विषय का आज्ञापत्र निकालकर आसपास के सभी गावो मे उसका प्रचार कराया। इसके लिए उसने राजपुर के थानेदार गुलाम हुसैन के पास अपना आदेश भेजा— हम तुम्हे राजपुर का थानेदार नियुक्त करते है, अत तुम्हे आदेश दिया जाता है कि गाव-गाव मे इस बात का प्रचार किया जाए कि हम महाराज सदाशिव राव झासी के राज-सिहासन पर आरूढ हुए है।" किन्तु जब गुलाम हुसेन ने इस आदेश को मानना अस्वीकार कर दिया, तो उसने (सदाशिव राव ने) पुन आदेश दिया कि गुलाम हुसेन को पदच्युत कर दिया गया है और उसकी सम्पत्ति जब्त करने की आज्ञा दी जाती है।

उसके इस तरह के अत्याचारो से आसपास के लोग बडे दुखी हुए। बात महारानी लक्ष्मीबाई तक पहुची, अत उन्होने सेना लेकर करेरा पर आक्रमण कर दिया। सदाशिव राव उनके सामने नही टिक सका और भाग खडा हुआ। उसने नरवर मे जाकर अपने प्राणो की रक्षा की। वहा जाकर वह पुन अपनी शक्ति बढाने का प्रयत्न करने लगा और कुछ दिनो बाद उसने नरवर (ग्वालियर रियासत) से लगे झासी के क्षेत्र पर आक्रमण कर दिया और वहा लूटपाट मचाने लगा। अत रानी की सेना पुन उसका सामना करने गयी। इस बार वह पकडा गया। पकडे जाने के बाद उसे झासी के किले मे बन्दी बना लिया गया।

नत्थे खां से सामना

झासी को अग्रेजो के प्रभाव से हीन देख तथा महारानी लक्ष्मीबाई को एक अबला समझकर ओरछा राज्य के विद्रोही दीवान नत्थेखा ने झासी पर अधिकार करने का अच्छा अवसर समझा। वह सदाशिव नारायण की अपेक्षा राजनीति का अधिक अनुभवी और शक्तिशाली शत्रु था। पहले ही युद्ध से महारानी को बडी कठिनाई से छुटकारा मिला था कि अपनी 20 हजार सेना के साथ नत्थे खा ने झासी पर आक्रमण कर दिया। उसका सामना करना सरल कार्य नही था। अतः महारानी ने मध्य भारत के अग्रेजी राजनीतिक अभिकर्ता से सहायता लेना उचित समझा और इस आशय के सन्देश के साथ अपना एक सन्देशवाहक उसके पास भेजा। नत्थे खा को यह बात मालूम हो गयी, तो उसने उस सन्देशवाहक की मार्ग मे ही हत्या करा दी। अतः महारानी लक्ष्मीबाई को वहा से सहायता नही मिल सकी। इससे महारानी के सामने एक विकट समस्या उत्पन्न हो गयी, किन्तु उन्होने साहस नही खोया तथा स्वय झासी की रक्षा के लिए प्रयत्न करने लगी। उधर नत्थे खा ने विचार किया कि यदि बिना किसी सघर्ष के ही सफलता मिल जाए, तो अच्छा रहेगा, अत उसने महारानी के पास सन्देश भेजा—'आप झासी का किला तथा झासी हमारे हस्तगत कर दे। हम भी आपको वही सम्मान देते रहेगे, जो अग्रेज देते है।'

महारानी ने नत्थे खा के इस प्रस्ताव को स्वीकार नही किया और अपने कर्मचारियो से विचार-विमर्श किया कि परिस्थिति का सामना किस प्रकार किया जाए। झासी के पास उस समय साधनो का अ-ाव था, जबकि नत्थे खा साधन-सम्पन्न था। इस सब पर विचार करते हुए कुछ कर्मचारियो ने परामर्श दिया कि नत्थेखा का प्रस्ताव स्वीकार कर लेना चाहिए। अपने कर्मचारियो के मुह मे ऐसी भीरुता भरी बात सुनकर महारानी को बडी निराशा हुई। क्रोधित होकर वह बोली—"तुम्हारे मनुष्य जीवन को धिक्कार है, मैं स्त्री होकर भी साहस और धैर्य से अपने कर्तव्य का पालन करना चाहती हू और तुम

पुरुष होकर ऐसे कायरतापूर्ण शब्द मुह से निकालते हो। इस नि सार ससार मे एक दिन सभी को मरना है। यदि हम अपने राज्य के काम आ जाए और कर्तव्य-पालन मे हमारा जीवन समाप्त हो जाए, तो क्या हमे इस लोक और परलोक मे यश नही मिलेगा ? मै युद्ध से कभी विमुख नही होना चाहती।"

महारानी के कई कर्मचारी ओरछा राज्य के थे। कहा जाता है, उनमे से कुछ नत्थे खा से मिल गये थे। उन्ही कर्मचारियो ने महारानी को नत्थे खा का प्रस्ताव मान लेने का परामर्श दिया था। किन्तु महारानी ने उनके परामर्श को ठुकरा दिया। इसके बाद उन्होने नत्थेखा के प्रस्ताव के विषय मे उसे पत्र लिखा, जिसके निम्न शब्द विशेष उल्लेखनीय है—

'मैं वीरश्रेष्ठ शिवराम भाऊ के वीरवश की प्रतिनिधि और महाराज गगाधर राव की पत्नी हू। अत प्रत्येक अभिमानी शत्रु का मानमर्दन करना अच्छी तरह जानती हू।"

इस पत्र को पाकर नत्थे खा क्रोध से भर उठा और उसने अपने सैनिको को झासी के किले पर धावा बोलने का आदेश दे दिया। महारानी इस परिणाम से पहले ही परिचित हो गई थी, अत नत्थे खा को पत्र लिखने के बाद उन्होने अपने विश्वासपात्र कर्मचारियो तथा झासी राज्य के बडे-बडे जागीरदारो को आमन्त्रित कर एक सभा बुलाई। इन बुन्देले जागीरदारो मे ओरछा के राजा के दामाद दीवान दलीपसिह, उनके मित्र दीवान रघुनाथ सिह, झासी राज्य के दीवान जवाहर सिह, कटीले वाले आदि थे। सभा मे उन्हे सम्बोधित करती हुई रानी ने कहा—"आप लोग ओरछा-नरेश के सम्बन्धी तथा झासी के सिहासन के सेवक है। आप इस कुघडी मे मेरी सहायता करें। मैं निर्णय ले चुकी हू कि मर मिटूगी, किन्तु नरपशु नत्थे खा के समक्ष झुककर अपने पूज्य पति और उनके स्वनामधन्य सर्वमान्य पूर्वज वीरश्रेष्ठ शिवराव भाऊ के पवित्र कुल को कभी कलकित नही करूगी। अब आप इस विषय पर क्या निर्णय लेते है। "आप इस जीवन-मरण के प्रश्न मे मेरा साथ देते है और अमर यश प्राप्त करते है या • "

सभी उपस्थित जागीरदार उनका साथ देने के लिए सहमत हो गये। तुरन्त सामना करने की तैयारिया होने लगी। किले पर अधिकार करते समय अग्रेजो ने वहा रखी पुरानी तोपे भूमि मे दबा दी थी। उन्हे निकाला गया। उनकी मरम्मत की गई। कारखाने मे तेजी से गोला-बारूद आदि बनाया जाने लगा। सभी जागीरदार अपनी-अपनी सेनाए लेकर पहुच गये। दूसरी प्रात महारानी ने दीवान जवाहर सिंह को सेनापति बनाकर रणककण बाध दिया और स्वय पुरुष वेश मे किले के मुख्य बुर्ज पर पहुच गयी। किले पर तोपे लगा दी गयी और पेशवाओ की प्राचीन ध्वजा तथा यूनियन जैक फहरा दिये गये।

उधर नत्थे खा की सेना भी किले की ओर बढी चली आ रही थी। ज्यो ही महारानी ने देखा कि शत्रु सेना तोप की मार के अन्दर आ गयी है, उन्होने तोपची गुलाम गौस खा को गोला दागने का आदेश दे दिया। तोप के गोलो की मार के सामने नत्थे खा की सेना ठहर नही सकी और लौट पडी। नत्थे खा ने रात्रि मे अपनी सेना को चार भागो मे विभक्त कर किला घेर लिया ओर चारो ओर से किले पर तोपो से गोले बरसाये जाने लगे। इससे किले के ओरछा दरवाजे के टूटने का खतरा पैदा हो गया। यह देख महारानी स्वय वहा जाकर सैनिको का उत्साह बढाने लगी, अत सैनिक दूने उत्साह से शत्रु का सामना करने लगे। शत्रु के प्रभाव को बढते देख महारानी के एक विश्वासपात्र वीर लाला भाऊ बख्शी ने किले की प्रसिद्ध तोप 'कडक बिजली' को बुर्ज पर चढवाया। उससे गोले छोडे गये। इसका अनुकूल प्रभाव पडा। शत्रु का दबाव कम हो गया। कुछ समय के लिए प्रतिपक्षी सेना तितर-बितर हो गयी और नत्थे खा के रोकने पर भी नही रुकी, किन्तु बाद मे नत्थे खा ने उसे फिर एकत्र कर लिया। कुछ दिनो तक उसकी सेना किसी प्रकार युद्ध करती रही। इसी युद्ध मे किले के दूसरे मोर्चे पर सेना का नेतृत्व दीवान रघुनाथ सिह कर रहे थे। उन्होने अपने पहाडी पर स्थित मोर्चे से नत्थे खा की सेना को भारी हानि पहुचायी। अन्तत नत्थे खा अधिक न टिक सका और

हारकर वापस लौट गया। उसे अपनी युद्ध-सामग्री को भी वही छोड देना पडा। इस प्रकार महारानी के इस युद्ध मे विजयश्री के साथ ही प्रचुर युद्ध-सामग्री भी प्राप्त हो गयी।

इस विजय के बाद महारानी ने पुन एक सभा का आयोजन किया, जिसमे युद्ध मे सहायता देने वाले जागीरदारो, वीरता दिखाने वाले योद्धाओ आदि को अनेक प्रकार के बहुमूल्य पुरस्कारो से सम्मानित किया गया। नत्थे खा के विरुद्ध इस सफलता की एक विस्तृत विवरणिका तैयार कराने के बाद महारानी लक्ष्मीबाई ने उसे बुन्देलखण्ड के तत्कालीन राजनीतिक अभिकर्ता हैमिल्टन के पास भिजवाया। जो व्यक्ति इस विवरणिका को लेकर हैमिल्टन के पास जा रहा था, उसे भी मार्ग में नत्थेखा के आदमियो ने पकड लिया और मार डाला। परिणामस्वरूप यह विवरणिका अपने गन्तव्य स्थान तक नही जा सकी।

नत्थेखां की नीचता

नत्थेखा महारानी लक्ष्मीबाई को अबला समझ बैठा था, इसीलिए उसने झासी पर आक्रमण किया था किन्तु महारानी ने अपने बुद्धि-चातुर्य से उसका मनोरथ विफल कर दिया था। इससे वह अपने आप को अत्यन्त अपमानित अनुभव कर रहा था। वह कोई ऐसा उदार प्रवृत्ति का व्यक्ति नही था, जो अपने वीर शत्रु के गुणो का सम्मान करता अथवा प्रतिपक्षी को केवल युद्ध-भूमि मे ही अपना शत्रु समझता, वह अत्यन्त धूर्त तथा नीच स्वभाव का मनुष्य था। अत जब वह महारानी से युद्ध मे हार गया, तो उन्हे किसी प्रकार हानि पहुचाने का विचार करने लगा। ऊपर लिखा जा चुका है कि जब महारानी ने उसके विरुद्ध युद्ध मे अपनी सफलता का विवरण बुन्देलखण्ड के राज-नीतिक अधिकर्ता को भेजा, तो विवरण ले जाने वाले सदेशवाहक को उसके व्यक्तियो ने मार्ग मे ही मार डाला। सन्देशवाहक के पास मिले विवरण को पढते ही उसने एक घृणित योजना बनायी। उसने विचार किया कि झांसी मे अंग्रेजो के हत्याकाड का दोष महारानी के

सर मढ देना चाहिए। इससे उन्हे अंग्रेजो का कोपभाजन बनना पडेगा। फलत उसने अपने अपमान का बदला इसी प्रकार परोक्ष रूप से लेने के लिए हैमिल्टन को इस आशय का पत्र लिखा कि महारानी लक्ष्मीबाई अंग्रेजो के विरुद्ध विद्रोही बन गई है और वह (नत्थेखा) इसीलिए उन्हे दबाने के लिए युद्ध कर रहा है। महारानी के सकेत पर झासी मे अंग्रेजो का हत्याकाण्ड हुआ।

नत्थे खा की यह कुटिल युक्ति काम कर गयी। अंग्रेजो ने महारानी को अपनी शत्रु समझ लिया, जिसकी परिणति अनिवार्य रूप मे युद्ध के ही रूप मे सामने आयी। इसका वर्णन अगले अध्यायो मे किया जाएगा। इस विषय को स्पष्ट करते हुए मार्टिन ने लिखा है—

"इसमे कोई सन्देह नही कि जब बागियो की सेना झासी से चली गयी, तो उन्होने (महारानी लक्ष्मीबाई) वह प्रदेश अपने अधिकार मे ले लिया किन्तु उस समय दतिया और देहरी के नरेशो ने हमारी सहायता के लिए एक बार अगुली भी नही उठायी। यदि वे चाहते, तो बडी सरलता से हमारी सहायता कर सकते थे, क्योकि ओरछा की सीमा झासी परेड से केवल डेढ मील और दतिया राज्य की सीमा छ मील थी। वे अपनी-अपनी सीमा मे सेना सहित हमारी सेना की कार्यवाही देख रहे थे। उन दोनो ने अपनी सेना एकत्र कर महारानी लक्ष्मीबाई पर यह विचार कर आक्रमण किया कि वे युद्ध के लिए तत्पर न होगी और हम सरलता से उनका राज्य छीन लेंगे, किन्तु इस वीरागना ने उनके दात खट्टे कर दिये।"

अब इस विवाद मे उपना अनावश्यक ही होगा कि अंग्रेजो ने केवल नत्थेखा के कहने मात्र पर ही महारानी लक्ष्मीबाई को अपना शत्रु समझ लिया था अथवा महारानी वास्तव मे अंग्रेजो को भारत से बाहर निकालने के लिए प्रतिबद्ध थी। यह विवाद और शोध का विषय है। अत इस प्रकार की अनिर्णयात्मक स्थिति मे हमे उपलब्ध विवरणो का ही सहारा लेना पडेगा।

यहा तक प्रत्यक्ष रूप मे महारानी लक्ष्मीबाई ने स्वय को अंग्रेजो का शुभचिन्तक ही दर्शाया था, किन्तु इसके बाद जब अंग्रेजो ने ही पहल कर दी, तो उन्होने भी उनका सामना करने से मुह नही मोडा।

अध्याय 5

वीरांगना समरांगण में

परिस्थितियो की मानव जीवन मे बडी महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है। महारानी लक्ष्मीबाई के जीवन-चरित्र का अवलोकन करने पर इन परिस्थितियो का बडा विचित्र रूप हमारे सामने आता है। एक सामान्य आर्थिक स्थिति वाले व्यक्ति मोरोपन्त की सात वर्षीय अबोध कन्या परिस्थितियोवश झासी के प्रोढ नरेश गगाधर राव की धर्मपत्नी रानी लक्ष्मीबाई बन जाती है, अठारह वर्षो की अवस्था मे वह विधवा बन जाती है, फिर वह अपने अधिकार की प्राप्ति के लिए अग्रेजी सरकार से आवेदन करती है, जिसका उसे कोई फल नही मिलता, फिर परिस्थितियोवश वह अनायास झासी की कार्यवाहक प्रशासिका बनती है, युद्ध लडती है और अन्त मे उन्हे प्रबल पराक्रमी अग्रेजी सत्ता से सघर्ष करना पडता है। यद्यपि यही सघर्ष उनके जीवन की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण घटना है फिर भी इस सघर्ष पर जाने से पहले कार्यवाहक प्रशासिका के रूप मे उनके कुछ अन्य कार्यो का उल्लेख करना हम समीचीन समझते है।

महारानी का शासनकाल

झासी मे सैनिक विद्रोह के अनन्तर महारानी लक्ष्मीबाई ने अग्रेजी सरकार के प्रतिनिधि के रूप मे प्राय दस मास तक शासन किया। इस अवधि मे उन्होने राज्य मे पूर्ण रूप से व्यवस्था बनाये रखने का प्रयत्न किया। इसके लिए उन्होने सेना मे नयी भरती भी की। पति के जीवनकाल मे उन्हे इस प्रकार प्रत्यक्ष रूप मे शासन-सचालन का अनुभव नही हुआ था, फिर भी यथाशक्ति उन्होने अच्छा प्रबन्ध किया।

उनके इन प्रयत्नो से राज्य मे शीघ्र ही सुख-शान्ति स्थापित हो गयी। उन्होने इतनी अल्प अवधि मे ही कुछ कारखाने भी स्थापित किये।

पहले लिखा जा चुका है कि पति की मृत्यु के बाद महारानी का जीवन एक सन्यासी जैसा हो गया था, केवल भजन-पूजन आदि ही उनके जीवन का अग बन गये थे। उस समय की उनकी मनोवृत्ति का अनुमान लगाने से उनकी इस जीवनचर्या को अकर्मण्यता का सूचक नही कहा जा सकता। साथ ही उस समय उनके पास शासन-सम्बन्धी कोई उत्तरदायित्व भी नही रह गया था, किन्तु अब शासन का उत्तर-दायित्व आने पर उन्होने अपनी जीवनचर्या बदल दी थी। वह नित्य प्रात पाच बजे उठ जाती थी। फिर स्नान आदि करने के बाद स्वच्छ सफेद साडी पहनती। तत्पश्चात् पार्थिव पूजन उनकी जीवनचर्या का अभिन्न अग था। उस समय वहा पर गायन और कथावाचन चलता रहता। फिर कर्मचारी आदि उनका अभिवादन करने आते। यदि कोई कर्मचारी एक दिन भी अभिवादन करने नही आता, तो दूसरे दिन महारानी उसके न आने का कारण अवश्य पूछती। इसके बाद उनके भोजन का समय होता और फिर विश्राम का। यदि इस बीच कोई उन्हे भेटे देने आ जाता तो वह विश्राम नही करती। भेटो मे आयी बहुमूल्य वस्तुए रख ली जाती, शेष याचको, निर्धनो आदि को दान कर दी जाती। अपराह्न मे तीन बजे वह दरबार मे जाकर राज्य-व्यवस्था तथा विवादो को देखती-सुनती।

इस काल मे महारानी ने परदा करना छोड दिया था। वह स्वय सिहासन पर बैठकर कर्मचारियो की बाते सुनती, उन्हे आदेश देती तथा न्याय करती, किन्तु इसका यह अर्थ नही समझना चाहिए कि वह दरबार मे सबके सामने बैठती थीं, जैसे राजा लोग बैठते थे। उनके बैठने के लिए दरबार मे एक विशेष प्रकार का कक्ष बना दिया गया था। दरबार मे बैठे लोग उन्हे नही देख सकते थे। उनके कक्ष के प्रवेश द्वार पर दो भाले लिये सैनिक खडे रहते और कक्ष मे उनके पास उनके दीवान लक्ष्मण राव बैठते थे। महारानी जो आदेश देतीं, दीवान लक्ष्मण राव लिखते जाते। इस विषय मे टेलर ने लिखा है—

"महाराष्ट्र की ब्राह्मणी होकर भी वह परदे मे रहना पसन्द नही करती थी। वह नित्य अपने स्वर्गीय पति के सिहासन पर बैठती, रिपोर्टें और प्रार्थनापत्र सुनती तथा आदेश देती। वह अपने पद के सर्वथा योग्य धैर्य तथा विवेकपूर्ण व्यवहार करती थी।"

महारानी लक्ष्मीबाई अभी केवल बाईस वर्ष के आस-पास ही थी, किन्तु उनकी बुद्धि बडी विलक्षण थी। वह प्रस्तुत किये गये प्रत्येक मामले पर सूक्ष्मता से विचार करने के बाद ही कोई निर्णय देती थी। इस विषय मे श्री पारसनीस के शब्द उल्लेखनीय है—

"लक्ष्मीबाई की बुद्धि बडी तीव्र थी। उनके सामने जो मामला पेश होता था, उसकी वे खूब जाच करती और स्वय उसका निर्णय करती। उनकी दक्षता से सब लोग प्रसन्न थे।'

इस काल मे उनके रहन-सहन, स्वभाव आदि का भी विस्तार से वर्णन मिलता है। महारानी स्वभाव से ही धार्मिक थी। वह अपनी कुलदेवी महालक्ष्मी के मन्दिर मे प्राय नित्य ही जाती थी, कभी घोडे पर बैठकर जाती, तो कभी पालकी मे मन्दिर आते-जाते यदि कोई दीन-दुखी मिल जाता, तो महारानी उसे कुछ-न-कुछ अवश्य देती। कहा जाता है, एक बार मन्दिर से वापस आ रही थीं, तो उन्हे देख रास्ते मे खडे भिखारी ऊची-ऊची आवाज मे चिल्लाने लगे। महारानी ने अपने साथ चल रहे दीवान लक्ष्मण राव से इसका कारण पूछा तो उसने बताया—'ये सब भिखारी है, जाडे के दिन है, इन्हे जाडे से कष्ट होता है, अत आप से प्रार्थना कर रहे है कि आप इनका कष्ट दूर करे।"

यह सुनकर महारानी ने उसी समय आज्ञा प्रसारित करा दी कि राजकोष से प्रत्येक भिखारी को भर पेट भोजन दिया जाए तथा प्रत्येक को एक-एक कम्बल, मिरजई तथा टोपी दी जाए। महारानी के इस शासनकाल मे झासी मे कोई भी भिखारी दुखी नही था। यही नही उनकी दया का प्रमाण पूर्व कथित इस शासनकाल मे लडी गयी दोनो लडाइयो मे भी देखने मे आया। उस युद्ध मे आहत हुए सैनिको की

स्वय देखभाल की। उनके इन गुणो को बताते हुए श्री पारसनीस ने अपनी पुस्तक 'महारानी लक्ष्मीबाई' मे लिखा है—

"महारानी लक्ष्मीबाई बडी दयालु थी। युद्ध मे जो पुरुष घायल होते थे, उनको वे स्वय देखती थी, उनके शरीर पर हाथ फेरती और उनके दवा-पानी और मलहम पट्टी का प्रबन्ध करती थी। इस दयालुता के कारण ही उनकी प्रजा उन पर माता की भाति श्रद्धा करती थी। लक्ष्मीबाई के चतुरता, उदारता, दयालुता आदि गुणो को देखकर यही कहना पडता है कि यदि उस भयकर विद्रोह के समय वे झासी की रक्षा न करती और किले को अपने अधिकार मे न ले लेती, तो वह प्रान्त विद्रोहियो के हाथ मे चला जाता, परन्तु दुर्भाग्य से महारानी लक्ष्मीबाई के शासन समय का अन्त और उसी के साथ उनकी जीवन-लीला के भी समाप्त होने का समय निकट आ गया।"

महारानी को घुडसवारी का शौक तो था ही, साथ ही उन्हे घोडो की परख भी अच्छी थी। यदि झासी मे कोई घोडा लेता तो खरीदने से पहले उसे महारानी को दिखाने लाता। एक बार घोडो का एक व्यापारी दो घोडे लेकर महारानी के पास आया। उसने महारानी को घोडे दिखाए तथा उनका मूल्य लगाने की प्रार्थना की। इस पर महा-रानी ने घोडो को अच्छी तरह देखने के बाद कहा—"इनमे एक घोडा एक हजार रुपये मूल्य का तथा दूसरा केवल पचास रुपयो का है।" महारानी के मुह से यह विचित्र बात सुन लोगो को बडा आश्चर्य हुआ और इसका कारण जानना चाहा। तब महारानी ने बताया कि जिसका मूल्य एक हजार रुपये कहा है, वह एक उत्तम श्रेणी का स्वस्थ घोडा हैं, जबकि दूसरे के सीने मे घाव है।" इससे घोडो का व्यापारी उनका लोहा मान गया।

महारानी लक्ष्मीबाई सार्वजनिक रूप मे इसी अवधि मे लोगो के समक्ष आयी थी। अत उनकी वेश-भूषा आदि का भी पुस्तको मे वर्णन मिलता है। गिलीन ने अपनी पुस्तक 'रानी' मे इसका उल्लेख इस प्रकार किया है—"यद्यपि उनकी वेशभूषा महिलाओ के समान

थी, फिर भी वह उनके समान उच्च स्तर की महिला से भिन्न थी। उनके सिर पर लाल रेशमी टोपी रहती थी, जिसमे मोतियो की लडे और जवाहरात जडे रहते थे। कम-से-कम एक लाख रुपये मूल्य की छोटी-सी हीरो की माला उनके गले की शोभा बढाती थी। उनकी चोली सामने खुली रहती थी, जिसमे उनका सन्तुलित और भरा हुआ वक्ष दीख पडता था। यह चोली कमर तक पहुचती थी तथा सुनहरी जरीदार पेटी से अच्छी तरह बधी रहती थी। कमर की इस पेटी मे दो उत्तम नक्काशीदार दमशक के बने हुए और चादी से मढे हुए पिस्तौल रहते थे। इन्ही के साथ एक सुडौल पेशकब्ज भी रहता था, जिसकी तीखी नोक विष-बुझी हुई थी। उसका एक मामूली-सा घाव भी प्राणाहारी होता था। मामूली साडी के बदले वह एक ढीला-ढाला पायजामा पहनती थी।"

प्रबलतम शत्रु से सामना

इधर महारानी सुचारु रूप से झासी का शासन चला रही थी। कदाचित् वह यह भी समझ रही थी कि विद्रोह मे अग्रेजो की सहायता करने से अग्रेज उनसे प्रसन्न हो जाएगे और उन्हे उनकी झासी वापस मिल जाएगी, किन्तु उधर अग्रेजो ने इसके सर्वथा विपरीत निर्णय ले लिया। उन्होने महारानी लक्ष्मीबाई को दोषी मान लिया और यह भी समझ लिया कि झासी अग्रेजी शासन के विरोधियो का गढ बन गया है। अग्रेजो ने यह सब कैसे मान लिया, इस विषय मे निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। श्री शान्ति नारायण ने इसका कारण नत्थे खा द्वारा भेजे गये शिकायत भरे पत्र को माना है, किन्तु यह बात भी सहसा गले नही उतरती। क्या अग्रेज केवल उसके पत्र को इतना महत्त्व देते ? जो भी हो, अग्रेजी सरकार ने झासी मे विद्रोह का कारण महारानी लक्ष्मीबाई को माना। अत उनके विरुद्ध युद्ध का निर्णय ले लिया गया। अग्रेज, महारानी से कितने भयभीत हो गये थे, इस बात का अनुमान इससे अच्छी प्रकार लगाया जा सकता है कि उनके विरुद्ध युद्ध का नेतृत्व करने के लिए इग्लैड से सर ह्यू रोज को

बुलाया गया, जो योरोप मे कई युद्धो मे भाग ले चुका था। अत' उसे युद्धकला का आचार्य माना जाता था।

सर ह्यूरोज 16 सितम्बर, 1857 को लन्दन से बंम्बई पहुचा। वहा उसने भारत सरकार के कमाण्डर इन चीफ तथा बुन्देलखण्ड के राजनीतिक अभिकर्ता हैमिल्टन से भावी युद्ध के विषय मे विचार-विमर्श किया और युद्ध की योजना बनाई।

महारानी के अयोग्य सलाहकारों का आत्मघाती कृत्य

इससे पूर्व अध्याय मे उल्लेख हो चुका है कि महारानी लक्ष्मीबाई के पास योग्य कर्मचारियो का अभाव था। जो व्यक्ति इस समय उनके अधीन कार्य कर रहे थे, वे नितान्त उत्तरदायित्वहीन सिद्ध हुए, जिसके कारण उन्हे इस बार भी अपूरणीय क्षति उठानी पडी। झासी मे यह समाचार पहुच गया था कि अग्रेजो का आक्रमण होने वाला है, किन्तु महारानी के उन अकर्मण्य कर्मचारियो ने इसे कोई महत्त्व नही दिया। जो दो-एक पुराने अनुभवी व्यक्ति थे, उन्होने उन्हे सचेत भी किया, किन्तु इसका कोई परिणाम न निकला। तब गगाधर राव के समय उनके न्यायाधीश रह चुके वृद्ध नाना भोपटकर ने एकान्त मे महारानी से कहा—"मै झासी के सिंहासन का सेवक रह चुका हू। समय अनुकूल नही है। भले ही आपने बार-बार अग्रेजो को समस्त विवरणो से अवगत करा दिया था, फिर भी निश्चित रूप से नही कहा जा सकता कि वे सुरक्षित सरकार के पास पहुच गए होगे। अत अच्छा यही रहेगा कि भारत सरकार के पास एक वकील भेजा जाए, जो इस बात को प्रभावी ढग से कह सके कि झासी के विद्रोह से आपका किसी प्रकार का सम्बन्ध नही है तथा आप झासी का प्रबन्ध सरकार की ही आज्ञा से कर रही हैं। यदि समय रहते इस बात से सरकार को अवगत नही कराया गया तो इसका परिणाम भयकर होगा।"

अनुभवी वृद्ध भोपटकर की यह बात उचित ही थी, अत महारानी ने अपने मन्त्रियो को आज्ञा दी कि इस उद्देश्य के लिए ग्वालियर तथा इन्दौर के राजनीतिक अभिकर्ताओ के पास एक योग्य और अनुभवी

वकील भेजा जाए, जिसका अंग्रेजी भाषा पर पूर्ण अधिकार हो। मन्त्रियो ने रानी के सामने हामी तो भर ली, किन्तु इसके लिए एक नवयुवक को भेज दिया। निश्चय ही उनका यह कार्य एक अक्षम्य अपराध था, एक आत्मघाती असावधानी थी। वह नवयुवक बडा ही मक्कार निकला, वह न तो ग्वालियर गया, न इन्दौर ही। वह ग्वालियर रियासत मे ईसागढ चला गया और रामचन्द्र बाजीराव के घर बैठा रहा। यही नही, महारानी को अंधेरे मे रखने के लिए वही से कार्य की प्रगति के विषय मे झूठे पत्र लिखता रहा, जिससे महारानी को विश्वास हो गया कि वह कार्य कर ही रहा है।

अंग्रेजों की तैयारियां

उधर अंग्रेज युद्ध के लिए पूरी शक्ति से तैयारिया कर रहे थे। युद्ध की योजना बनाने के बाद कमाण्डर इन चीफ ने पूरी सेना को दो भागो मे विभक्त कर दिया। इनमे एक भाग ह्यूरोज के अधीन रखा गया तथा दूसरा ह्विटलॉक के अधीन। बम्बई, मद्रास तथा हैदराबाद (निजाम) की सेनाए ह्यूरोज के नियन्त्रण मे थी। ह्यूरोज ने 17 दिसम्बर, 1857 को इस सेना का नियन्त्रण अपने हाथ मे लिया और इसके दो भाग कर दिए। पहले भाग मे उसने बम्बई का तीसरा रिसाला, 86वी पल्टन के दो भाग, बम्बई नेटिव इन्फेंट्री की 25वी पल्टन और तीन तोपखाने रखे तथा दूसरे भाग मे बम्बई रिसाले का मुख्य भाग, हैदराबाद कंटिन्जेण्ट का एक रिसाला, तृतीय बम्बई यूरोपियन रेजीमेन्ट, 24वीं बम्बई नेटिव इफेंट्री, हैदराबाद कंटिन्जेण्ट की एक पैदल पल्टन, भोपाल का तोपखाना तथा मद्रास सैपर्स की एक कम्पनी रखी। इनमे प्रथम भाग मऊ मे तथा दूसरा सीहोर मे रखा गया। 6 जनवरी, 1858 को ह्यूरोज राबर्ट हैमिल्टन के साथ सीहोर के लिए चल पडा। मार्ग मे उसे भोपाल की बेगम के भेजे हुए आठ सौ सैनिक भी मिल गये। उन्हे भी साथ लेकर ह्यूरोज सागर की ओर चला गया।

रहटगढ़ मे ह्यूरोज को प्रथम विजय

सागर जाते हुए ह्यूरोज ने सागर से लगभग 39 कि० मी० पहले

रहटगढ के किले पर आक्रमण कर दिया। उस समय उस किले को विद्रोही मुसलमानो ने अपने अधिकार मे ले लिया था। उन्होने वहा अच्छी सुरक्षा व्यवस्था की हुई थी, किन्तु उनकी सख्या बहुत कम थी। फिर भी उन्होने चार दिनो तक जमकर अग्रेजो का सामना किया। अन्त मे उन्हे किला छोडकर भागना पडा। अपने इस अभियान मे ह्यूरोज की यह पहली विजय थी।

रहटगढ विजय के बाद ह्यूरोज सेना सहित वहा से लगभग 24 कि० मी० दूर बारोदिया गाव पहुचा। वहा बानपुर के राजा ने कुछ विद्रोहियो को शरण दे रखी थी। ह्यूरोज की सेना को वहा भी विजय मिली, किन्तु वहा उसकी सेना का कप्तान नविली भी मारा गया।

ह्यूरोज को सागर आदि स्थानो पर विजय

रहटगढ तथा बारोदिया मे विजयी होने के बाद वह आगे बढा और 3 फरवरी, 1858 को उसने सागर पर चढाई कर दी। वहा से भी विद्रोहियों को भगा दिया गया और वहा के किले मे फसे अग्रेजो को मुक्त कर लिया गया। सागर पर अधिकार करने के बाद ह्यूरोज वहा से प्राय 40 किलोमीटर दूर गढाकोटा नामक किले पर पहुचा। इस किले पर बगाल की 51वी तथा 52वी पल्टन के विद्रोहियो का अधिकार हो गया था। ह्यूरोज ने किले पर आक्रमण कर अनायास ही उसे अधिकार मे कर लिया।

इस प्रकार उसने नर्मदा नदी के उत्तर मे एक बहुत बडे भूभाग पर शीघ्र ही अधिकार कर लिया। अब उसने बुन्देलखण्ड की ओर बढने का विचार किया। अग्रेज बुन्देलखण्ड मे विद्रोहियो का मुख्य गढ झासी को मानते थे, इसलिए कमाण्डर इन चीफ सरकॉलिन काप्टेल ने पहले ही कह दिया था कि जब तक झासी पर अधिकार नही कर लिया जाएगा, तब तक उत्तरी भारत मे सम्पूर्ण रूप मे विद्रोहियों का दमन नही होगा। झासी पहुचना कोई सरल कार्य नही था, क्योकि सागर से कानपुर तक सभी स्थानो पर विद्रोही अधिकार कर चुके थे। वहा पहुचने का मार्ग भी दुर्गम था और विद्रोहियो ने सुरक्षा के प्रबन्ध भी अच्छे

किए थे । ह्यूरोज को युद्ध के मोर्चों का अच्छा अनुभव था । अत उसने अपनी सेना को छोटे-छोटे अनेक भागो मे विभक्त कर अलग-अलग घाटो से होते हुए जाने की आज्ञा दे दी । वह स्वय थोडी-सी सैना के साथ दमनपुर घाट की ओर चल पडा । इस घाट पर उसे विद्रोहियो से सामना करना पडा । वहा उसका घोडा मारा गया तथा वह स्वय घायल हुआ । इस प्रकार इस युद्ध मे अनेक बुन्देले सरदारो को अपने प्राणो से हाथ धोने पडे ।

शाहगढ का विलय

"वहां से विद्रोहियो को पराजित करती हुई अग्रेजी सेना सराय के किले के पास पहुची । उसने वही शाहगढ के राजा के बाग मे अपना शिविर डाला । दूसरे दिन मुरोवर गाव पर चढाई कर वहा अधिकार कर विद्रोहियो को तहस-नहस कर डाला गया । बुन्देलखण्ड के राजनीतिक अभिकर्ता ने शाहगढ के अग्रेजी राज्य मे विलय की घोषणा कर दी । अग्रेजी सेना ने सराय के किले पर तोपे लगा दी । शाहगढ का राजा पहले ही भाग गया था, किन्तु उसके अनेक सरदार पकड लिये गए और उन्हे फासी दे दी गई । उनमे एक ज्योतिषी भी पकडा गया था, जिसने राजा को मुहूर्त बताया था कि इस मुहूर्त मे विद्रोह करने से अवश्य विजय प्राप्त होगी । अग्रेजी सेना के साथ चल रहे डा० लो ने इस प्रकार ज्योतिषियो के मुहूर्त पर कार्य करने वाले अन्धविश्वासो की बडी खिल्ली उडाई है ।

ह्यूरोज की सेना का जो भाग बानपुर की ओर से गया था, उसे कम युद्ध करना पडा । शाहगढ के पराजय का समाचार सुनते ही वहा का राजा परिवार सहित भाग गया था । हैमिल्टन ने 10 मार्च को बानपुर के अग्रेजी राज्य के अधीन होने की घोषणा कर दी । इस पर भी मेजर बायलो ने 11 मार्च को वहा के राजमहल का कुछ भाग तोप से उडवा दिया तथा शेष भाग मे आग लगा दी । इसके अगले दिन अंग्रेजी सेना ताल बेहर गाव के पास पहुची । वहा बहुत से विद्रोही रुके हुए थे । विशाल अग्रेजी सेना को देख वे भाग खडे हुए । वहा अधिकार करने के

बाद ह्यूरोज ने 17 मार्च के दिन बेतवा पार की और चन्देरी के प्राचीन दुर्ग पर अधिकार कर लिया। इसके बाद उसने झासी की ओर प्रस्थान किया और सेना सहित 19 मार्च को झासी से केवल 22 कि० मी० दूर चन्देरी जाकर अपना पडाव डाला।

झांसी का घेरा

20 मार्च, 1857 को ह्यूरोज ने एक तोपखाने तथा कुछ घुडसवार सेना को झासी के मार्गों की नाकेबन्दी करने के लिए भेज दिया। इसके बाद वह स्वय भी वहा जाने की तैयारी करने लगा। तभी उसे गवर्नर जनरल का एक पत्र मिला, जिसमे उसे पहले चरखारी मे जाने का आदेश दिया गया था। चरखारी का राजा अग्रेजो का मित्र था। उस पर तात्या टोपे ने आक्रमण कर दिया था, अत पहले उसकी रक्षा करना आवश्यक बताया गया था। ऐसा ही पत्र बुन्देलखण्ड के राजनीतिक अभिकर्ता हैमिल्टन के पास भी आया था। इस पत्र ने उनके लिए एक दुविधा की स्थिति पैदा कर दी। जिस स्थान पर सेना पहुच गई थी, वहा से झासी केवल 22 कि० मी० दूर था, जबकि चरखारी की दूरी प्राय 129 कि० मी० थी। हैमिल्टन पहले झासी पर अधिकार करना अधिक महत्त्वपूर्ण समझता था, अत उसने इसके महत्त्व को स्पष्ट करते हुए एक पत्र गवर्नर जनरल को लिखा। इसके बाद 20 मार्च को ह्यूरोज अपने दल-बल सहित झासी की ओर चल पडा।

महारानी लक्ष्मीबाई की प्रतिक्रिया

इस समाचार के प्राप्त होते ही झासी मे खलबली मच गई। महारानी के दरबारी बडे व्याकुल हो गए। अनुभवी लोगो का वहा अभाव ही था। अब क्या किया जाए, इस विषय पर चर्चा होने लगी। नाना भोपटकर के परामर्श पर कुछ लोग ग्वालियर मे कुछ अनुभवी लोगो की सलाह लेने भेजे गए। वहा के लोगो ने यही सलाह दी कि अग्रेजो से युद्ध नही करना चाहिए। ह्यूरोज के पास एक व्यक्ति भेजा जाए, जो वहा जाकर सारी स्थिति स्पष्ट कर दे और मित्रता हो जाए। इस

सलाह से झासी दरबार के कुछ लोग सहमत न हुए। इसका कारण यह था कि झासी के अधिकाश लोग अग्रेजो मे अप्रसन्न थे। अत उन्होने युद्ध करनें का परामर्श दिया। उस समय महारानी किले मे रहती थी। पूर्व कथित अनुभवहीन लोगों को उनके पास जाने की अनुमति नही थी। महारानी ने यह विचार-विमर्श अपने विश्वासपात्र परामर्शदाताओ के साथ किया।

जिस समय यह विचार-विमर्श चल रहा था, उसी समय अग्रेजो की ओर से एक सन्देहवाहक के आने की सूचना मिली। उसे सम्मानपूर्वक अन्दर बुलाया गया। उसने महारानी को सम्मान सहित सलामी दी और ह्यूरोज का भेजा हुआ एक पत्र आगे बढा दिया। मन्त्री ने पत्र लिया और पढकर सुनाया, जिसमे महारानी को निम्नलिखित सूचना दी गई थी—

"रानी लक्ष्मीबाई को यह सूचना दी जाती है कि हम अपनी सेना सहित यहा पहुच गए है। आपके यही हित मे होगा कि आप दो दिन के अन्दर अपने आठ मन्त्रियो के साथ नि शस्त्र होकर हमसे हमारे शिविर मे मिले, जिससे आपके भविष्य के विषय मे कोई निर्णय लिया जा सके। आपके साथ आने वाले आठ व्यक्तियो के नाम निम्न-लिखित है—

1 दीवन लक्ष्मण राव, राजमत्री, 2 दीवान जवाहर सिह, 3 दीवान रघुनाथ सिह, 4 सरदार लाला भाऊ बक्शी, 5 सरदार मोरोपन्त ताम्बे, 6 सरदार नाना भोपटकर, 7, सरदार गुलाम गौसखा।

यदि इस आज्ञा का पालन नही किया गया, तो कठोर दण्ड मिलेगा।"

सर ह्यूरोज

कमाण्डर इन चार्ज

यहा यह स्पष्ट कर दे, इतना निश्चित है कि बुलाए आठ ही व्यक्ति गए थे, किन्तु आठवें व्यक्ति का नाम किसी भी पुस्तक मे नही मिलता।

इसका यही अर्थ लगाया गया कि इस प्रकार बुलाकर ह्यूरोज उन्हे

बन्दी बनाना चाहता है । दूत चला गया । इसके बाद महारानी ने निर्णय लिया कि युद्ध करना ही पडेगा । यह निर्णय लेने से पूर्व उन्होने ह्यूरोज के प्रस्ताव को अस्वीकार करते हुए उसके पास एक पत्र भी भेजा । इस पत्र की निम्नलिखित पक्तिया विशेष उल्लेखनीय है—

'आपने अपने पत्र मे बुलावे का कोई कारण नही लिखा है, जिसे हम अपना खुला अपमान समझते है। इसके साथ ही इसमे आपने जो शर्ते रखी है उसे कोई भी स्वाभिमानी वीर स्वीकार नही कर सकता । हम यह नही समझ पा रहे है कि अग्रेजी सरकार अपने शुभचिन्तक पुराने मित्रो का अपमान क्यो कर रही है। ऐसी दशा मे हम यह विश्वास कैसे करे कि आपके शिविर मे आने पर हमारे साथ विश्वासघात नहीं होगा। कारण, दिल्ली के मुगल सम्राट् के साथ भी अग्रेज सरकार इससे पूर्व ऐसा व्यवहार कर चुकी है, किन्तु हम आपको विश्वास दिलाते है कि हम अपनी ओर से कोई विवाद नही करना चाहते और न हमने इससे पूर्व कभी ऐसा किया । अत यदि आप चाहे तो हम अपने राज्य की प्राचीन परम्परा के अनुसार अपने दीवान साहब को सशस्त्र अगरक्षको के साथ आपके शिविर मे भेजने को तैयार है, जिससे वह आपके साथ सन्धि की उचित शर्तों का निर्णय कर सके ।

रही हमारे आपके शिविर मे आने की बात, तो इस विषय मे आपको ज्ञात होना चाहिए कि हिन्दू धर्म तथा सस्कृति के अनुसार कोई भी स्त्री किसी पर-पुरुष से इस प्रकार मिलने कभी नही जा सकती । अत आप हमसे भी यह अपेक्षा न करे ।'

महारानी द्वारा युद्ध का निर्णय

ह्यूरोज के लिए इस पत्र को भेजने के बाद महारानी ने अग्रेजो के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी । उन्होने कठोरता के साथ कहा—"जो भी व्यक्ति किसी कारण से इस युद्ध मे भाग न लेना चाहे, वह अपने प्राणो की रक्षा के लिए जहा चाहे, भाग जाए ।'

महारानी के इस निर्णय के विषय मे विभिन्न इतिहासकारो ने अनेक प्रकार की बातें लिखी है । कुछ लोग मानते है कि उन्होने बन्दी

बनाए जाने के भय से विवशता मे यह निर्णय लिया। कुछ लोगो का मानना है कि अंग्रेजी सेना को उन्होंने मुह पर सफेद रग पोतकर आई नत्थे खा की सेना समझ लिया। कुछ लोगो ने लिखा है कि महारानी ने कुछ लोगो को अंग्रेजो के पास सन्धि के लिए भेजा था, किन्तु अंग्रेजो ने उन्हे फासी पर लटका दिया। अत इस युद्ध का निर्णय लिया गया।

इस विवाद मे पडना अनावश्यक है कि महारानी लक्ष्मीबाई ने निर्णय क्यो लिया, क्योकि महत्त्व युद्ध का है, न कि निर्णय का। निर्णय लेने के बाद महारानी युद्ध की तैयारियो मे सलग्न हो गई। उन्होने किले की रक्षा का प्रबन्ध कर लिया। यह किला झासी के पश्चिम मे एक छोटी-सी पहाड़ी पर स्थित है। उन्होन किले मे व्यूह-रचना कर ली। सभी सरदारो को उनके निश्चित स्थान पर नियुक्त कर दिया। दुर्ग की प्राचीर (दीवार) 16 से 20 फीट तक चौडी थी। उसकी भी अच्छी तरह मरम्मत कर दी गई। प्रत्येक बुर्ज पर तोपे समायोजित कर दी गई। सबसे बडे बुर्ज की लम्बाई तथा चौडाई 20-20 फीट है और उसकी ऊचाई 62 गज कही जाती है। उसमे झासी राज्य की प्रसिद्ध तोपें, 'कडक बिजली', 'भवानी शकर', 'घन गर्जन' और 'नालदार' लगवा दी गयी। किले की चारो ओर की खाई पानी से पूरी तरह भर दी गयी। उसमे विष-बुझे भाले गडवा दिए गए। किले मे युद्ध की तथा भोजन आदि की सामग्रियो की समुचित व्यवस्था कर ली गई। महारानी के पास सोने-चादी के जो भी आभूषण थे, उन्हे गलाकर सिक्को मे ढाल दिया गया, जिससे धन की कमी से काम न रुके। लोहा, पीतल आदि जितना उपलब्ध हो सका, उसकी भी गोला-बन्दूक आदि युद्ध सामग्री बना ली गई। इस कार्य मे झासी की स्त्रियो ने भी भाग लिया।

युद्ध आरम्भ

21 मार्च 1858 को प्रात ही ह्यूरोज झासी के बिल्कुल पास पहुच गया था। उसने एक ऊची पहाडी पर दूरबीन लगा दी और वहा से किले तथा पूरे शहर का निरीक्षण किया। जिन-जिन स्थानो से किले

मे सहायता पहुच सकती थी, उनकी नाकेबन्दी कर दी गई। सभी मुख्य स्थानो पर तोपे लगा दी गईं। इसी समय चन्देरी से ब्रिगेडियर स्टुअर्ट ी सेना सहित वहा पहुच गया। ह्यूरोज ने नगर मे स्थान-स्थान पर तथा किले की चारदीवारी के चारो ओर सैनिको के छिपने के लिए गड्ढे खुदवा दिए तथा सेना जहा-जहा भी थी वहां तार लगा दिए, जिससे युद्ध के समाचार एक से दूसरे स्थान तक शीघ्र पहुच जाए। ह्यूरोज दूरबीन से बराबर किले की गतिविधियो का निरीक्षण कर रहा था। उसी ने लिखा है कि "किले के अन्दर पुरुषो के समान स्त्रिया भी कार्यरत थी"—"किले मे मोर्चा बाधने तथा गोला-बारूद ढोने का कार्य स्त्रिया कर रही थी।" उसकी सेना के साथ गए डा० लो ने भी किले की गतिविधियो की प्रशसा करते हुए लिखा है—

"हमने पहुचने के बाद ही देखा कि वे लोग किले के दक्षिणी द्वार से कुछ ही दूर पूर्व मे दीवार पर तीन तोपो का मोर्चा बडी तत्परता से बाध रहे हैं। वे मधुमक्खियो की तरह कार्य मे डूबे हुए थे। इस तत्परता से काम करते हुए इससे पहले हमने भारतीयो को कभी नही देखा था। उन्होने यह मोर्चा अतिशीघ्र बिल्कुल इजीनियरो के समान त्ता र लिया।"

कहने का आशय यही है कि दोनो पक्ष अपनी-अपनी स्थिति के अनुसार तैयारी मे कोई न्यूनता नही रहने देना चाहते थे। बस युद्ध प्रारम्भ होने • र की देरी थी। झासी के समीप सभी मैदानी स्थानो तथा छोटी-छोटी पहाडियो पर अग्रेजी सेना ने मोर्चे सभाल लिये और किले के अन्दर झासी की रानी की सेना पूरी तरह प्रतिबद्ध थी। 23 मार्च, 1858 की प्रात सूर्य निकलते ही अग्रेजी सेना के बिगुल बज उठे। इस युद्ध के आरम्भ होने का वर्णन करते हुए श्री शान्ति नारायण ने अपनी पुस्तक 'महारानी झासी मे लिखा है—

"23 मार्च का सूर्योदय होते ही बिगुल के कर्कश स्वर चहु ओर वायुमण्डल मे गूजने लगे और विजय के नशे मे उन्मत्त सर ह्यू की विकट तथा बहु-सख्यक सेना झासी दुर्ग की ईंट से ईंट बजाकर, उसमे दुर्गबन्द अल्पसख्यक, किन्तु वीर साहसी तथा देशभक्त सेना का अस्तित्व

ससार से मिटा डालने के लिए रणभेरी के आवेश भरे स्वरो पर कदम उठाती रणक्षेत्र मे चारो ओर से आगे बढने लगी। दुर्ग के समीप पहुचते ही यह प्रबल सेना चारो ओर से दुर्ग पर दनादन गोले बरसाने लगी और इन तोपो के पीछे पैदल और सवार सैनिक भी नियमबद्ध पक्तियो मे दसो दिशाओ से दुर्ग तथा नगर की ओर बढने लगे।"

आदेश मिलते ही अग्रेजी सेना ने किले पर आक्रमण कर दिया, किन्तु किले की तोपो के प्रहार से उनके छक्के छूट गए। उसी रात्रि किले की दीवार के पास अग्रेजो की तृतीय यूरोपीय पल्टन ने मोर्चा सभाला। झासी के किले मे रखी 'घनगर्जन' तोप अपने आप मे अनूठी थी। उसका गोला छूटते समय धुआ भी नही उठता था, अत फिरगी सेना को सभलने का मौका भी नही मिल पाता। उसके गोलो से उन्हे भारी हानि उठानी पडी।

24 मार्च को फिरगियो ने चार मोर्चे बाध कर व्यूह रचना की। उनकी 24 एव 18 पौण्डर्स तोपो की मार से झासी के कई तोप-गोलन्दाज मारे गए, अत किले के अन्दर तोपें चलाने वालो की कमी पड गई थी। किले की प्राचीर को भी भारी क्षति पहुची। फिर भी फिरगी अपने लक्ष्य मे सफल न हुए, किसी घर के भेदी ने किले पर विजय पाने का उपाय अग्रेजो को बता दिया। अग्रेजो ने उसके बताए अनुसार शहर के पश्चिम मे मोर्चा बाधा और वहा से शहर पर गोले बरसाने लगे। इससे शहर मे हा-हाकार मच गया। वहा एक भी आदमी चलता हुआ नही दिखाई देता था। यह समाचार महारानी को मालूम हुआ, तो उन्हे असीम दु ख हुआ। उन्होने शहर के लोगो की रक्षा के लिए अपना सारा ध्यान उधर ही केन्द्रित कर दिया। वह तोप भी सरदार गुलाम गौसखा के पास उन स्थानो पर गई जहा अग्रेजो की 'गिरनाली' तोप ने विनाश-लीला मचाई थी। यह तोप जिस किसी मकान की छत पर गिरती उसकी सभी मजिलो को तोड डालती। इसके गोलो मे छोटे-छोटे छुरे, सुए आदि भी भरे होते थे, जो इधर-उधर छिटका कर कई लोगो को मार डालते थे। वहा जाकर महारानी ने निराश्रित हुए लोगो के लिए सदावर्त खुलवाए तथा उनकी सुरक्षा के प्रबन्ध किए।

25 मार्च को ह्यूरोज ने अपनी पूरी शक्ति किले के दक्षिण की ओर लगा दी। चन्देरी युद्ध की विजयी प्रथम ब्रिगेड भी वही नियुक्त की गई। पूरी शक्ति लगा देने पर भी फिरगियो को कोई सफलता नही मिली।

26 मार्च को ह्यूरोज ने वहा पर और सेना भेज दी। दोनो ओर से भयकर गोलाबारी हुई। अग्रेजो की तोप ने किले के दक्षिणी बुर्ज पर भीषण गोलाबारी कर दी, फलत उस बुर्ज का तोपची परलोक सिधार गया और तोप बन्द हो गयी। इससे झासी की सेना के समक्ष एक और समस्या आ खडी हो गयी। अग्रेजो की तोपे लगातार गोले बरसा रही थी। जो भी व्यक्ति दक्षिणी बुर्ज के पास जाने का साहस करना, प्राणो से हाथ धो बैठता। लोग वहा पर जाने से भी डरने लगे। इस पर महारानी की आज्ञा से पश्चिमी बुर्ज की 'कडक बिजली' नामक तोप को वहा पर मगाया गया। गुलाम गास खा ने उसे उचित स्थान पर लगाया और फिर दूरबीन मे फिरगिया के मोर्चे का निरीक्षण किया। अत उन पर तोप से दनादन गोले बरसाये गये। इससे फिरगियो का मोर्चा तितर-बितर हो गया। इस पर पहली तोप पर भी नियन्त्रण हो गया।

28 मार्च की रात्रि भी इसी प्रकार के आक्रमण से कई बार किले की तोपो से काम रोक देना पडा। 29 मार्च के दिन दोपहर बाद तक किले के अन्दर से गोली नही चलायी गयी, किन्तु साढे तीन बजे मे सायकाल तक फिर जमकर गोलावारी हुई। उसी रात्रि फिरगियो ने किले पर डेढ-डेढ मन के गोले बरसाये, जिससे वहा भारी तबाही हुई। फिर भी महारानी लेशमात्र भी विचलित नही हुई। उनके प्राय सभी बडे-बडे योद्धा मार गए, किन्तु वह बडे साहस के साथ सैनिको का उत्साह बढाती रही। 31 माच तक लगातार युद्ध होता रहा। दोनो ओर की सेनाए वीरता से लडती रही। फिरगियो की सेना अच्छी तरह प्रशिक्षित तथा उनके सेनापति युद्धो के विशारद थे। महारानी यद्यपि महान वीरागना थी, किन्तु उन्हे युद्धो का विशेष अनुभव नही था, साथ ही उनके सैनिक भी विशेष प्रशिक्षित नही थे।

इस विषय मे श्री पारसनीस ने लिखा है—

"अंग्रेजी सेना के सेनापति अपने कर्तव्य पालन मे खूब दक्ष थे और उनके सैनिक पाश्चात्य युद्धकला मे प्रवीण तथा आज्ञाकारी थे। अंग्रेजी सेना मे किसी प्रकार की अव्यवस्था नही थी। यद्यपि रानी स्वय शूर और धीरोदार थी, तथापि उनकी सेना का प्रबन्ध उतना अच्छा न था। उनकी सेना मे प्राय अनाडी, युद्ध-विद्या से अपरिचित और केवल लूट की सम्पत्ति प्राप्त करने की आशा से लडाई मे शामिल होने वाले ही अधिक थे। उनके बडे-बडे सरदार और अधिकारी लोग भी अंग्रेजो के विरुद्ध बलवा करने वालो मे से ही थे। वे लोग नियमित रीति मे कुछ काम करना न जानते थे, इसलिए युद्ध के प्रबन्ध का सब भार अकेली लक्ष्मीबाई के साहस और शूरता पर निर्भर था। यह कोई आश्चर्य की बात नही कि झासी की सेना मे नियमयुक्त प्रबन्ध और कर्तव्य-दक्षता न होने से महारानी की सारी स्वाभाविक शक्ति व्यर्थ ही चली गयी। तथापि उन्होने अपने बाहुबल और बुद्धिबल से दस-ग्यारह दिनो तक प्रबल अंग्रेजी सेना का भयकर सामना किया और अपनी अनुपम शूरता तथा अद्भुत् पराक्रम की पाश्चात्य युद्धकला विशारदो से प्रशसा करायी।"

महारानी के सैन्य-सचालन और साहस की प्रशसा मे 30-31 मार्च के युद्ध का वर्णन करते हुए उह समय फिरगी सेना मे विद्यमान डाक्टर लो ने भी लिखा है—

"30-31 मार्च को भी गोलो की वर्षा और किले की प्राचीर की तोड-फोड लगातार जारी रही। शत्रु भी हम पर भयानक अग्नि वर्षा करता रहा। यद्यपि हमने उसके किले और प्राचीर के सभी मोर्चो को भारी क्षति पहुचाई, फिर भी उनके द्वारा अपनी नित्य की देख-भाल तथा भीषण युद्ध जारी रखने के अटल निश्चय मे कोई कमी नही आयी। वे सभी वैसे ही दृढ और अटल बने रहे, वरन, इसके प्रतिकूल ऐसा मालूम पडा कि हमारी ओर से दिखाया गया और डाला हुआ हर भय और विपत्ति मानो उनके साहस और प्रयत्नो को और भी वृद्धिशील करने वाला सिद्ध हो रहा हो।"

31 मार्च तक अंग्रेजो द्वारा हर सभव प्रयत्न किये जाने पर भी महारानी ने अपनी अद्भुत वीरता से अंग्रेजो की एक न चलने दी, उन्हे किले के पास फटकने भी नही दिया। 31 मार्च का सग्राम कदाचित् सर्वाधिक भयकर था। महारानी के ही एक सैनिक ने भी इसका वर्णन निम्नलिखित शब्दो मे किया है—

"आठवें दिन का युद्ध अत्यन्त भयकर था। दोनो ओर के वीर अत्यन्त सावधानी से युद्ध कर रहे थे। बन्दूक, कडाबीन तथा तोपो की आवाज से आकाश गुजायमान हो रहा था। नगर मे हजारो मनुष्य मृत्यु को प्राप्त हो रहे थे। कुछ प्राणरक्षा के लिए गुप्त स्थानो मे छिपने का प्रयत्न कर रहे थे। नगर की दीवार पर जो गोलन्दाज और सैनिक नियुक्त थे, उनमे से अनेक मारे गए। उनके स्थानो पर नये लोगो को नियुक्त किया गया। महारानी को इस युद्ध की व्यवस्था करने मे भारी परिश्रम करना पडा। जहा किसी प्रकार की कमी या अव्यवस्था होती, वह स्वय वहा पहुच जाती तथा उसकी व्यवस्था करती। अत उनकी सेना के लोग उत्साहित और रोमाचित होकर युद्ध कर रहे थे। भले ही अंग्रेजो ने बडी वीरता से युद्ध किया, फिर भी 31 तारीख तक वे किले मे प्रवेश नही कर सके।"

31 मार्च का दिन किले के लिए अशुभ ही रहा। किले के सरोवर से कहार पानी भर रहे थे। ह्यू रोज ने दूरबीन की सहायता से उन्हे देखा, तो उन्ही पर तोपो से गोले बरसा दिये। इससे कई कहार मारे गये अथवा घायल हो गये। यह देख रानी क्रोधित हो उठी, उन्होने पश्चिमी बुर्ज पर रखी सभी तोपो से अंग्रेजो पर गोले बरसाने का आदेश दे दिया। इससे कुछ देर के लिए अंग्रेजो की ओर से गोले बरसने बन्द हो गए। किले मे पानी की व्यवस्था कर ली गयी। फिर अंग्रेज सभल गए। उन्होने भी भारी गोलाबारी कर दी। दुर्भाग्य से एक गोला महारानी के शस्त्रो के भण्डार के समीप जा फटा, जिससे गोला-बारूद मे आग पकड गयी। इससे महाविनाश-लीला पैदा हो गयी, किन्तु महारानी फिर भी विचलित नहीं हुईं।

तात्या टोपे प्रकरण

विद्रोह की असफलता के कारण नाना साहब भाग गये थे। इसके बाद वह कहा गये, इस विषय मे इतिहास स्पष्ट रूप से कुछ बता पाने मे असमर्थ है। पहले अध्याय मे लिखा जा चुका है कि पेशवा बाजी राव के राव साहब तथा नाना साहब, दो दत्तक पुत्र थे। नाना साहब का इस समय कोई पता नही था। अग्रेजो के विरुद्ध युद्ध का निर्णय लेते समय महारानी लक्ष्मीबाई ने राव साहब से सहायता मागने के लिए पत्र लिखा था। इसी समय महारानी को पता चला कि राव साहब की ओर से वीर तात्या टोपे उनकी सहायता के लिए आ रहे है। तात्या टोपे, नाना साहब के सेनापति रह चुके थे। 1857 के स्वतत्रता सग्राम मे उनकी भूमिका का अपने आप मे एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। नाना साहब कानपुर से प्रस्थान करते समय कार्यभार राव साहब को सौंप गए थे। अब तात्या टोपे ही विद्रोह का सचालन कर रहे थे।

वीर तात्याटोपे बीस हजार सेना लेकर महारानी लक्ष्मीबाई की सहायता के लिए कालपी से चल पडे और झासी के पास पहुच गये। ह्यू रोज को यह सूचना मिल गयी। उसकी सारी सेना इस समय किले की घेराबन्दी मे व्यस्त थी। वह युद्धो का सचालन करने मे बडा कुशल था। अत 31 मार्च की रात्रि मे उसने पहली ब्रिगेड के कुछ सैनिको को चुपचाप तात्याटोपे के मार्ग की ओर भेज दिया तथा ओरछा के मार्ग पर 24 पौण्डर्स की दो तोपे लगा दी। यह कार्य इतने गुप्त रूप मे और सावधानी के साथ किया गया कि किले के अन्दर इसकी भनक भी न लगी। इस तरह ह्यू रोज बडी युक्ति से कार्य कर रहा था। उसे तात्याटोपे की वीरता के विषय मे अच्छी तरह ज्ञात था। तात्याटोपे के कुशल नेतृत्व से 1857 के विद्रोह मे विद्रोहियो को भारी सफलता मिली थी। उसके विषय मे इग्लैण्ड के प्रसिद्ध समाचार पत्र 'डेली न्यूज' ने लिखा था—

"तात्या टोपे एक मराठा ब्राह्मण है। हा, वह किसी उच्च वश का नही है। उसकी अवस्था प्राय 25 वर्ष है। वह अत्यन्त साहसी, उद्यमी धीर, गम्भीर, वीर योद्धा है। उसका शरीर सुडौल, सुगठित है। वह

मध्यम कद का है। उसका माथा चोडा, ऊचा और रग गोरा है। वह सदा साधारण वस्त्र पहनता है तथा उसका भोजन भी सामान्य है। डाके डालना, लूट-मार करना ही उसका कार्य है। यद्यपि वह अशिक्षित है, फिर भी बडा धूर्त तथा बुद्धिमान है। उसे अपने साथियो से विशेष प्रेम है, इसीलिए हजारो वीर योद्धा उसके साथ रहते है। वह कभी अकेले नही रहता, 20-25 योद्धा सदा अगरक्षक के समान उसके साथ रहते है। वह अपनी वाक्कला के जादू से जिसे चाहे, अपने वश मे कर लेता है। गरीबो-निर्धनो को दान देने मे तथा धनियो को लूटने का उसे विशेष शौक है। दिन-रात घोडे पर सवार रहने पर भी वह नही थकता। एक दिन मे घोडे पर बैठकर सवा सौ मील तक दौडना उसके लिए सामान्य बात है। वह स्वय को नाना साहब का प्रतिनिधि मानता है।"

4 दिसम्बर 1857 को लन्दन के ही एक दूसरे समाचार पत्र 'टाइम्स' मे भारतीय सवाददाता रसेल का भी एक पत्र प्रकाशित हुआ था, जिसमे अग्रेजो मे व्याप्त तात्याटोपे के आतक का अच्छा परिचय मिलता है—

"हमारा विचित्र मित्र तात्याटोपे इतना चतुर और कठोर है कि मै उसकी सराहना किये बिना नही रह सकता। उसने हमारे बहुत से नगर उजाड दिये, खजाने लूट लिये, युद्ध सामग्री के भण्डार खाली कर दिये, सेनाए एकत्र की और कटवा डाली। राजाओ से तोपे छीन ली और खो दी तथा फिर छीनी और फिर खो दी। अपनी तीव्र गति मे वह बिजली से भी तेज है। कई-कई सप्ताहो तक वह प्रतिदिन 30-30, 40-40 मील की गति से चलता है। दूसरी सेना के आगे-आगे रहने पर भी वह सहसा बिजली के समान पीछे आ पहुचता है। सभवत कोई सर्वश्रेष्ठ वायुयान भी अपनी मशीनरी से ऐसी तेजी नही दिखा सकेगा। पर्वतो की चढाई पर, नदी-नालो के बहाव पर, कन्दराओ, घाटियो, दलदलो मे, कही भी आगे-पीछे, ऊपर-नीचे, इधर-उधर आने-जाने मे उसे कोई नही रोक सकता। पेचीदे से पेचीदे चक्करदार मार्गो मे वह बाज की तरह हमारी गाडियो मे झपटकर हमारी बम्बई की

डाक उडा ले जाता है। कभी कोई गाव लूट-लाटकर फूक जाता है, उस छलावे को कोई नही पकड सकता।"

कहने का अर्थ यही है कि तात्याटोपे जैसी विपत्ति का सामना करना ह्यू रोज सर्वप्रथम और सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कार्य समझता था।

अंग्रजों का तात्याटोपे से युद्ध

ह्यू रोज सेना भेज चुका था। उधर तात्या के साथ ग्वालियर की कटीजेंट सेना भी थी। तात्या को यह सूचना मिली कि अग्रेजो के पास बहुत कम सेना है। उन्होने (तात्या) कानपुर मे अग्रेजो के चतुर सेनापति जनरल विढाम की सेना को बुरी तरह पराजित किया था। अत उन्हे विश्वास हो चला था कि वह झासी मे भी अग्रेजो को हरा देगे। उनकी निजी सेना इस समय बेतवा के तट पर थी, उसे भी चरखारी मे विजय प्राप्त होने से अपनी शक्ति का अभिमान हो गया था। इस प्रकार हम कह सकते है कि वीर तात्याटोपे की समग्र सेना विजय के मद से चूर्ण थी। युद्ध मे शत्रु को निर्बल समझना आत्मघाती होता है।

1 अप्रैल 1858 को तात्याटोपे की सेना का एक भाग पूरे वेग से झासी की ओर बढ चला। इधर फिरगी सेना पूरी तरह सावधानी से तैयार थी। ज्यो ही तात्या टोपे की सेना उनके गोलो की सीमा मे आयी, उस पर दाहिनी ओर से कप्तान लाइटफूट की तथा कप्तान प्रेटीजान की सेना ने और बाईं ओर से ह्यू रोज की तोपो ने एक साथ आक्रमण कर दिया। इस सहसा हुए दुतरफा भीषण आक्रमण से तात्या टोपे की सेना घबरा गयी और इधर-उधर भागने लगी। अग्रेजो ने इस अवसर का लाभ उठाते हुए गोलाबारी जारी रखी। तात्याटोपे की सेना को सभलने का भी अवसर न मिला, अत भाग खडी हुई। उधर तात्या की कुछ सेना बेतवा के तट पर जगल मे छिपी बैठी थी। दुर्भाग्य से किसी द्रोही के विश्वासघात से ह्यू रोज को इसका पता लग गया।

तात्याटोपे की पराजय

ह्यू रोज ने इगलटूप की चार तोपें तथा फील्ड बैटरी देकर कप्तान लाइटफूट को बेतवा के तट के जंगल की ओर भेज दिया। फिरगी सेना को अपनी ओर आता देख तात्या की सेना ने जगल मे आग लगा दी, जिससे वह उधर न बढ़ सके। इस पर फिरगी सेना ने बेतवा के तट पर सुरक्षित स्थानो पर मोर्चा बाध लिया।" फिर दोनो मे भीषण युद्ध छिड गया। दोनो ओर से तोपो से गोले बरसाये जाने लगें। अग्रेजो की सेना सुरक्षित स्थान पर थी, इसलिए उसे कम हानि हुई। अग्रेजो की सेना ने बडे साहस के साथ नदी पार की और आगे बढकर आक्रमण कर दिया। तात्याटोपे की सेना के लिए ठहर पाना कठिन हो गया। इसलिए भाग खडी हुई। इस युद्ध मे उसे अपनी तोपो से भी हाथ धोने पडे, तोपें इतनी भारी थी कि शीघ्रता मे वे उन्हें अपने साथ नही ले जा सके, तोपो के पहिए नदी के रेत मे धस गये थे। अग्रेजों ने तात्या की भागती हुई सेना का सोलह मील तक पीछा किया तथा उनकी युद्ध-सामग्री पर भी अधिकार कर लिया।

इस प्रकार ह्यू रोज को अभी तक झासी के किले पर तो विजय नही मिली किन्तु वीरवर तात्या टोपे को पराजित कर उसे बडी प्रसन्नता हुई।

यहा यह देखकर आश्चर्य होता है कि जब अग्रेजो की सेना तात्याटोपे से सघर्ष कर रही थी और इसका पता किले मे महारानी को भी लग गया था, तब ऐसे समय पर किले से अग्रेजो की सेना पर गोले क्यो नहीं बरसाये गयें, जबकि ऐसा करना उस समय झासी के लिए अत्यन्त लाभप्रद हो सकता था। इस विषय मे गिलियन ने अपनी पुस्तक 'रानी' मे महारानी लक्ष्मीबाई और तात्याटोपे का एक सवाद उद्धृत किया है। कदाचित यह सवाद बाद मे कालपी अथवा किसी अन्य स्थान पर हुआ था। यह सवाद इस प्रकार है—

तात्याटोपे—महारानी! जब हम लोग अग्रेजो से लड रहे थे, तो आपके दुर्ग की तोपें चुप क्यो रही? यदि ऐसा न होता, तो हम कदापि न हारते।

महारानी— वीर सेनापति ! उस समय ललितावादी नामक एक ब्राह्मण ने हमारी तोपो से होने वाली अग्निवर्षा बन्द करा दी कि यह तो पेशवाई सेना है। उसने अन्त तक हमे यही बताया कि वे लोग हमला करने के लिए नही, अपितु इसलिए तोपे दाग रहे हैं कि हम किले से बाहर निकल जाए।

यह ललितावादी उस समय किले के बुर्ज पर नियुक्त था। उसने या तो महारानी के साथ विश्वासघात किया अथवा अपनी मूर्खता से पेशवा की सेना को अग्रेजो की सहायक समझ लिया। उसके कहने पर ही किले से तोपे चलाना बन्द कर दिया गया, अन्यथा जिस समय तात्याटोपे की सेना से अग्रेजो का प्रथम बार सघर्ष हुआ, उस समय यदि अग्रेजो पर किले की तोपो से भी गोले बरसाये जाते, तो अग्रेजी सेना को दोनो ओर का सामना एक साथ करना भारी पडता। किले के तोपो के बन्द हो जाने से उन्हे तात्याटोपे की सेना को पराजित करने का अच्छा अवसर मिल गया। इस विषय मे ह्यूरोज के साथ विद्यमान डाक्टर सिल्वेस्टर ने भी आश्चर्य प्रकट करते हुए लिखा है— "हम इसका अनुमान नही लगा सकते कि जिस समय पेशवा की सेना बाहर से किले मे घिरे लोगो की रक्षा कर रही थी, किले के लोगो ने हम पर यकायक आक्रमण क्यो नही किया ? उन लोगो की सख्या इतनी अधिक थी कि उनकी अवश्य जीत होती।"

झासी नगर में प्रवेश

तात्याटोपे को पराजित करने के बाद ह्यूरोज ने अपना ध्यान पुन झासी के किले पर केन्द्रित किया। 23 मार्च से 3 अप्रैल तक एडी-चोटी का जोर लगाने पर भी फिरगी किले को नही जीत सके थे। अत उसने किले पर तितरफा आक्रमण की योजना बनायी। पश्चिमी दिशा से आक्रमण का नेतृत्व मेजर गॉल को, दक्षिण की ओर का लेफ्टीनेंट कर्नल लिडेल, ब्रिगेडियर स्टुअर्ड और कप्तान राबिन्सन को तथा बायी ओर का नेतृत्व लेफ्टीनेंट कर्नल लोथ और मेजर स्टुअर्ड को सौपा। पूरी तैयारी के साथ सभी अपनी-अपनी सेनाए लेकर

अपने निर्धारित स्थानो पर जा पहुचे। 3 अप्रैल को दोपहर बाद लगभग 3 बजे तीनो ओर से किले पर एक साथ आक्रमण कर दिया। इनमे से पहली सेना किसी प्रकार किले के पास पहुच गयी और उसने प्राचीर पर चढने के लिए सीढिया लगा दी तथा उस पर चढने का प्रयत्न करने लगी। दूसरी तथा तीसरी सेना बन्दूके और तलवारें लेकर युद्ध करती हुई शहर मे जाने का प्रयास करने लगी।

किले की प्राचीर पर पहरा देने वाले झासी के वीरो ने जब देखा कि शत्रु सीढिया लगाकर ऊपर चढने का उपक्रम कर रहे है, तो उन्होने खतरे का बिगुल बजा दिया। इससे किले के अन्दर की सेना सावधान हो गयी। इस समय किले की दशा वास्तव मे गम्भीर हो गयी थी। ग्यारह दिन तक लगातार गोले बरसने से जन-धन की अपार हानि हुई थी। किले की प्राचीर भी कई स्थानो से क्षतिग्रस्त हो गई थी। वीर तात्या की पराजय के समाचार से वहा भी निराशा जैसी फैल गयी थी। इसका उन पर एक मनोवैज्ञानिक प्रभाव भी पडा, क्योकि तात्या जैसे वीर को कोई सामान्य सेना नही हरा सकती थी, अत वे अपनी पराजय अवश्यम्भावी समझने लगे थे। महारानी लक्ष्मीबाई अपने सैनिको की इस मनोदशा से अनभिज्ञ नही थी। फिर भी उन्होने साहस नही खोया था। खतरे का बिगुल बजते ही किले मे सभी एकत्रित हो गये। सभी के चेहरो पर भय एव निराशा का भाव स्पष्ट दिखायी दे रहा था। महारानी ने एक वीरागना के धर्म का निर्वाह करते हुए उनसे कहा—

"वीर योद्धाओ! इस बात से आप अच्छी तरह परिचित है कि हमने यह युद्ध पेशवा अथवा किसी अन्य के सहारे प्रारम्भ नही किया, न ही आपने आज तक जिन युद्धो मे विजयश्री प्राप्त की, वह पेशवा की सहायता से मिली। आप अपने ही बल और पराक्रम से विजयी हुए। हम अपने धर्म के पालन के लिए, स्वाधीनता तथा आत्मसम्मान की रक्षा के लिए इस युद्ध की अग्नि मे कूदे हैं। जिस प्रकार आप लोगों ने अब तक धैर्य और वीरता के साथ अपना नाम ऊचा किया है, उसी प्रकार अब भी साहस के साथ युद्ध करे। झासी की रक्षा का

भार आपके ऊपर है। अब समय आ गया है कि हमे अपने पवित्र लक्ष्य के लिए सम्भवत अपने अन्तिम बलिदान के लिए तत्पर हो जाना चाहिए।"

इसके बाद महारानी ने अपने मुख्य-मुख्य सेनापतियो को वस्त्र आभूषण आदि पुरस्कार मे दिये। महारानी के इन शब्दो से उनके सैनिको मे साहस का नया सचार हुआ। महारानी ने अपनी सेना को तीन भागो मे विभक्त किया। सभी अपने-अपने स्थानो पर जाकर शत्रुओ से लोहा लेने लगे। गुलाम गौसखा अग्रेजो पर तोप से गोले बरसाने लगा। महारानी अपनी अगरक्षक सेना के साथ किले के प्रत्येक मोर्चे पर जाकर युद्ध का निरीक्षण करने लगी और आवश्यक युद्ध सामग्री पहुचाने लगी। शत्रु सेना किले के एक भाग पर लगातार गोले बरसा रही थी। महारानी ने गौसखा को उधर ही गोले बरसाने का सकेत किया। शत्रु की तोपो के प्रहार से किले के प्राचीर मे कई छेद हो गये थे। दोनो ओर से एक-दूसरे पर भयकर गोलाबारी हो गयी। उस समय कोई नही कह सकता था कि विजयश्री किसका वरण करेगी।

नगर मे भी फिरगियो ने भारी गोले बरसाये। वहा 'आरसी महल' नाम का एक प्राचीन गणेश मन्दिर था, जिसमे भाद्रपद के महीने मे गणेश चतुर्थी का मेला लगता था। इस मेले मे स्त्री-पुरुष प्रत्येक जाति के लोग बिना किसी प्रकार की ऊच-नीच की भावना के भाग लेते थे। तोपो की मार से वह मन्दिर धराशायी हो गया। वहा चार व्यक्तियो की मृत्यु हो गयी। इससे नगर मे हाहाकार मच गया। इसका समाचार पाकर महारानी क्रोधित हो उठी। उन्होने अपने सैनिको को आदेश दे दिया—"घन गर्जन, कडक बिजली, महाकाली, भवानी शकर, आदि सभी तोपो को नगर के प्रमुख द्वार की ओर केन्द्रित कर शत्रु सेना को भून डालो।"

आदेश का पालन होते ही सभी तोपे एक साथ गरज उठी, फलत शत्रु को पीछे हटने के लिए बाध्य होना पडा। फिर अंग्रेजो ने नगर के मुख्य द्वार पर भारी धावा बोल दिया। दीवार के साथ ही वह किले के

बुर्ज पर भी गोले बरसाते जा रहे थे। लेफ्टीनेंट बाक्स तथा लेफ्टीनेंट बेनस ने सचमुच भारी वीरता का परिचय दिया। भारी गोली वर्षा मे भी वे प्राणो को हथेली मे रखकर शहर की दीवार में सीढ़ी लगाकर चढने का प्रयास करने लगे। झासी के वीरो के गोलो ने उनका काम तमाम कर दिया। इसके बाद लेफ्टीनेंट डिक तथा लेफ्टीनेंट मिक जी जौन अपूर्व साहस का परिचय देते हुए दीवार पर चढ गए तथा अपनी सेना को बुलाने लगे। झासी की सेना ने उनका भी काम तमाम कर दिया। इसके बाद लेफ्टीनेंट बोनस और फाक्स ने भी साहस किया, तो वे भी मारे गए।

उधर किले के दक्षिणी ओर ले० डिक को मुह की खानी पडी, वहा का नेतृत्व ब्राकमन ने सम्भाल लिया। ब्रिग्रेडियर स्टुअर्ड तथा कर्नल लोथ 25वी और 26वी पैदल सेना से नगर के ओरछा द्वार पर अधिकार करने मे सफल हो गये थे। यह देखकर नगर मे रखी हुई झासी की सेना ने अपने प्राणो का मोह त्याग दिया और शत्रु सेना को गाजर-मूली की तरह काटने लगी, किन्तु मुट्ठीभर झासी के वीर अपार शत्रु सेना का कहा तक सामना करते। अन्तत वहा पर शत्रुओ का अधिकार हो गया। इसके बाद शत्रु आगे बढकर राजमहल पर अधिकार करने का विचार करने लगे। इस विजय मे इला जी बुन्देले ने झासी के साथ विश्वासघात कर अग्रेजो की सहायता की थी। उसी की सहायता से शत्रु दीवार पर सीढी लगाने मे समर्थ हुए। उसके इस कार्य के लिए बाद मे अग्रेजी सरकार की ओर से उसे दो गावो की जागीर दी गई। इस युद्ध का डा० लो ने अपनी पुस्तक 'सेण्ट्रल इण्डिया' मे आखो देखा वर्णन करते हुए लिखा है—

"जैसे ही हमारी सेना उस सडक की ओर बढी, जो नगर के मुख्य द्वार की ओर जाती थी, शत्रु के सैनिक के बिगुलो की आवाज से सारा वायुमण्डल गूज उठा, उसके साथ ही प्राचीर से हमारे ऊपर गोलो, गोलियो, तीरो, भालो, जगी हवाइयो आदि की भयकर बौछार होने लगी, जिसका परिणाम हमारी सेना के सर्वनाश के सिवा और कुछ भी नहीं हो सकता था। इसी मृत्यु वर्षा मे हमे लगभग दो सौ गज आगे

बढना था। हमारे वीर आक्रमणकारी सैनिक मरते-गिरते आगे बढते ही गए। और अन्तत उन्होने दीवार के पास पहुचकर तीन स्थानो पर सीढिया भी लगा ली, किन्तु प्राचीर पर से बरसने वाले गोलो-गोलियो के शब्दो और हताहत वीर योद्धाओ के हृदय-विदारक चीत्कारो मे हमारे वीरो के सिरो पर गोले बरसे कि उन्हे वहा ठहरने का साहस न हुआ तथा जहा भी सिर छिपाने का स्थान मिला, भाग जाने के लिए विवश हो गए। फिर भी हमारी वीर सफर-मेना सेना के कुछ योद्धा उस पर चढने मे सफल हो गए। उनकी देखा-देखी दूसरो ने भी प्राणो की परवाह किए बिना उस पर चढने का प्रयास किया, किन्तु उनके अधिक सख्या मे चढने के बोझ से असन्तुलित होकर सीढिया टूट गई और वे धडाम से एक-दूसरे के ऊपर आ गिरे। उसी समय किसी ने वापसी का बिगुल बजा दिया। अत हमारे वीरो को युद्धभूमि से हट जाना पडा।

अपनी सेना को इस प्रकार पीछे हटते और भागते देख मेजर ब्राकहम वीरता के जोश मे महारानी की सेना मे घुस गया और मार-धाड करने लगा। दूसरी ओर ब्रिगेडियर स्टुअर्ड और करनल लोथ भी अपनी 25वी और 26वी पल्टनो के साथ ओरछा द्वार की ओर बढे। झासी के सैनिक बहुत कम रह गए थे, फिर भी वे लडते रहे, किन्तु बेचारे कब तक लडते? अन्तत उन्हे अपार सेना के सामने पीछे हटना पडा। इतने मे दक्षिणी युद्ध क्षेत्र मे अग्रेजी सेना के वीरो ने फिर साहस करके दीवार पर अपनी सीढिया लगा दी और वे फिर उन पर चढने लगे। इस बार भी बुन्देले वीरो ने खूब तलवारे चलायी, किन्तु अगणित अग्रेजी सेनाओ के सामने उन मुट्ठीभर वीरो की एक न चली। गोरे और देशी सैनिक दीवार से कूद-कूद कर नगरो मे प्रवेश कर गए।"

इस प्रकार बारहवे दिन शत्रुओ की सेना झासी शहर मे प्रवेश करने मे सफल हो गई। यह महारानी के लिए एक बहुत बडा आघात था। शहर मे प्रवेश करने पर अग्रेजो को आधी विजय तो मिल ही गई। अब वे किले पर अधिकार करन की योजना बनाने लगे।

झांसी की पराजय

शहर मे प्रवेश करने के बाद ह्यूरोज महारानी लक्ष्मीबाई के महल पर अधिकार करने के लिए चल पडा। उधर किले की दीवार से जब वहा स्थित पहरेदारो ने शहर की ओर देखा, तो वहा हजारो गोरे घूम रहे थे और हा-हाकार मचा हुआ था। यह देखकर कुछ देर के लिए महारानी सन्न रह गईं, किन्तु दूसरे ही पल उन्होने स्वय पर नियत्रण पा लिया। उनकी इस दशा का शब्द चित्रण करते हुए श्री पारसनीस ने लिखा है—"जब उन्होने शहर के दक्षिण भाग की ओर देखा, तब शहर के भीतर हजारो गोरो को घूमते देखकर और शहरवासियो के हा-हाकार को सुनकर क्षणभर के लिए उनका धीरज छूट गया। उनके चेहरे पर निराशा और भय के चिह्न दीख पडने लगे। इस कुसमय मे भी हृदय को मजबूत कर उन्होने विचारा कि यह शरीर अनित्य है, इसे किसी दिन परित्याग करना ही पडेगा, तब का-पुरुषो की तरह कायरता दिखाना बडी लज्जा की बात होगी। युद्ध मे प्राण देकर स्वर्ग मे जाना सबसे उत्तम है। जो युद्ध मे पीठ फेरते है, उनकी गति नही होती ••"

अत महारानी लक्ष्मीबाई ने अपने अगरक्षक सैनिको से कहा—"रणवीरो ! अब अधिक सोच-विचार का समय नही रह गया है, अन्तिम बार वीरो के योग्य साहस दिखाते हुए मर-मिटने का समय आ गया है। क्रूर शत्रु के हाथो बन्दी बनकर फासी पर लटकाए जाने की अपेक्षा, कही उचित और प्रशसनीय होगा कि हम सिंहो के समान शत्रु समूह का विनाश करते हुए वीरगति का वरण करे। अत आओ, आगे बढो और शत्रु का सहार करते हुए अमर हो जाओ, जिससे जाति के कवि तुम्हारे वीरोचित कर्मो का गुणगान करने मे प्रसन्नता का अनुभव करे।"

इसके बाद वह हथियार बाधकर शीघ्र किले से नीचे उतर गईं। उनके पीछे-पीछे उनके लगभग डेढ हजार अफगान सैनिक भी चल पडे। किले के द्वार से निकलते ही उन्होने शहर के दक्षिण की ओर से अन्दर घुस आए, अग्रेजो पर आक्रमण कर दिया। महारानी घोडे पर सवार

होकर हाथ मे नगी तलवार लिये आगे बढ रही थी और उनके पीछे-पीछे अफगान सैनिक चल रहे थे। अफगान सैनिक गोरो को काट-काट कर भूमि मे बिछाने लगे। अफगानो के रूप मे अपने काल को सामने देख गोरे इधर-उधर गलियो मे भाग गए तथा वही से महारानी और उनके सैनिको पर गोलिया चलाने लगे। इसी बीच वहा अग्रेजो की और सेना भी आ गई। उस सेना ने भी छिपकर गोलिया चलाना आरम्भ कर दिया। इन विषम परिस्थितियो को देख महारानी के एक 75 वर्षीय वृद्ध सरदार ने उनसे कहा—"इस तरह खुले मैदान मे प्राणो से खेलना अच्छा नही है। गोरे आड से गोलिया चला रहे है। शहर मे हजारो फिरगी घुस आए है। अत अच्छा यही होगा कि आप किले मे चलकर भावी योजना पर कुछ विचार करे।"

महारानी को वृद्ध शुभचिन्तक का परामर्श उचित जान पडा। अत वह शत्रुओ का सहार करती हुई दुर्ग की ओर मुड गई और अपने कुछ सैनिको के साथ सुरक्षित वापस किले मे आ गई तथा भावी कार्यक्रम पर विचार करने लगी।

महारानी का कालपी-प्रस्थान का निर्णय

किले मे महारानी को शहर की प्रत्येक गतिविधियो की सूचना मिल रही थी। जब उन्होने देखा कि उनकी सेना हारती जा रही है, तो वे किले मे स्थित अपने महल मे चली गई। उस समय उनके दुख का कोई अन्त न था। वह अपने दीवान खाने मे जाकर बैठ गई और भावी योजना पर विचार करने लगी। शहर की दशा देखकर वह दया एव क्रोध के मिश्रित भाव से भर गई। प्राय आधे घण्टे तक वह किसी से कुछ नही बोली। परिस्थिति उनके प्रतिकूल होती जा रही थी। इसी समय उन्हे उनके मुख्य तोपची गुलाम गौसखा तथा किले के मुख्य द्वार के रक्षक कुअर खुदाबख्श के मारे जाने का समाचार मिला। इससे उन्हे और भी भारी आघात पहुचा। उनकी आखो से आसू बह रहे थे। उनके सामने क्या हो, क्या न हो का सशय उत्पन्न हो गया था, किन्तु इस प्रकार के सशय से कोई समस्या हल नही हो सकती थी।

उन्होने तुरन्त कुछ निर्णय लिया और अपने युद्ध मे बचे सभी सहयोगियो, परामर्शदाताओ को बुलाया और उन्हें अपना अन्तिम सन्देश दिया—

"आज तक आप लोगो ने शत्रु के साथ भीषण युद्ध करते हुए झासी की रक्षा की, किन्तु अब ऐसे चिह्न नही दिखाई देते है कि हम लोगो की विजय होगी। हमारे बडे-बडे योद्धा, सरदार, गोलन्दाज युद्ध मे काम आ गए है। शहर की प्राचीर तथा सभी द्वारो के रक्षक मारे गए हैं। शहर पर अंग्रेजो का अधिकार हो गया है तथा उन्होने प्रत्येक स्थान पर चौकिया बैठा दी हैं। अब किले पर आक्रमण कर उसे अधिकार मे लेना उनके लिए सरल हो गया है। प्रात होने ही वे किले पर चढ आएगे और हमे बन्दी बना लेंगे, फिर न जाने वे किस प्रकार हमारे प्राण लेंगे। अत मैंने सकल्प ले लिया है कि गोला-बारूद वाले कक्ष मे जाकर उसमे आग लगाकर आत्मघात कर लूगी। मै जीते जी अपने शरीर को गोरो के स्पर्श से अपवित्र नही होने दूगी अत जो मेरे साथ प्राण त्यागना चाहते है, यही बने रहे। शेष लोग रात्रि मे किले से नीचे उतर जाए और अपने प्राण बचाने का प्रयत्न करे।'

महारानी लक्ष्मीबाई के इन शब्दो को सुनकर लोग विस्मित रह गए। इस पर एक वृद्ध व्यक्ति बोला - "बाई साहिब! आप शान्त हूजिए। झासी पर जो विपत्ति आई है, उसके विनाश का अब हमारे पास कोई उपाय नही है, ससार के सभी कार्य पूर्वजन्म के सचित कर्मों के अनुसार ही फलीभूत होते है। आत्मघात की गणना हिन्दू धर्म शास्त्र के अनुसार महापातको मे होती हे। इस सब पर विचार कर आप सदृश वीरागना राजमाता का आत्महत्या करना उचित नही है। पूर्वजन्म मे किए दुष्कर्मों का फल ही हम इस जन्म मे भोग रहे है। इस जन्म मे भी पाप कर हमे दूसरे जन्म के लिए पापो का सचय नही करना चाहिए। इस दुख को शान्तिपूर्वक सहन करना चाहिए। आप वीर रमणी हें, आपको आत्मघात का विचार हृदय मे नही लाना चाहिए, अपितु इस विपत्ति से मुक्ति का अन्य उपाय विचारना चाहिए। यदि दुर्ग मे रहना आप उचित नही समझती, तो आपको आज रात्रि ही दुर्ग से निकलकर शत्रु के घेरे से बाहर हो जाना चाहिए। कालपी मे पेशवा

की सेना रुकी है, आप वही चली जाए और उनसे मिले। यदि दुर्भाग्य से मार्ग मे आप वीरगति को भी प्राप्त हो जाती है, तो आत्मघात की अपेक्षा रणभूमि मे प्राण त्यागकर स्वर्ग प्राप्त करना श्रेयस्कर है।"

महारानी को वृद्ध परामर्शदाता के ये शब्द सारगर्भित जान पडे, अत उन्होने ऐसा ही करने का निश्चय किया। सायकाल उन्होने अपने सभी सहयोगियो और सेवको को अपने पास बुलाया, उन्हे पुरस्कार दिए तथा गुप्त मार्ग से किले से निकल जाने का आदेश दे दिया। महारानी भी वहा से चल पडने को तत्पर हो गई।

मार्मिक विदाई

वहा से प्रस्थान करने से पूर्व महारानी ने अपने स ी प्रियजनो को पुरस्कृत करने के बाद उनसे कहा—"जिसके पास जो भी हल्का बहुमूल्य आभूषण या रत्न किसी के पास हो, वह बिना किसी सचोच के अपनी जेबो मे, कमर मे घोडे को खुर्जियो मे अथवा गठरी मे छिपा कर बाध ले, जिससे वह देश-विदेश मे जहा भी जीता-जागता पहुच जाए, तो उसे धन के अभाव मे कोई कष्ट न हो।"

इसके बाद जब महारानी चल पडने को तैयार हुई, तो वहा एक अपूर्व मार्मिक दृश्य पैदा हो गया। उनकी पुरानी दासिया विदाई की इस वेला मे अपनी भावनाओ पर नियन्त्रण नही रख सकी, वे सभी रोने लगी, उन सभी ने महारानी के चरण स्पर्श किये और फिर उनसे विदा लेकर, अपनी प्रिय झासी से विदा लेकर झासी की महारानी एक अनिश्चित भविष्य लेकर किले से सदा-सदा के लिए निकल गयी। उनसे अनुमति लेकर उनके कुछ सेवक भी उनके साथ चल पडे। पिता मोरोपन्त भी साथ चल रहे थे। सभी लोग सशस्त्र घोडो मे बैठकर जा रहे थे। जाने से पूर्व उन सभी ने राजकोष से रुपयो की थैलिया अपनी कमरो मे बाध ली थी। शेष कोष एक हाथी के हौदे मे रख दिया गया, जिसके साथ एक छोटी-सी सेना भी चल रही थी। महारानी के पिता मोरोपन्त भी कोष के ही साथ थे।

किले से महारानी के साथ लगभग दो सौ लोग चले। इसे समय

महारानी पुरुषो की वेशभूषा मे थी, शरीर मे अगरखा, सिर मे पगडी तथा कमर मे तलवार लटक रही थी। वह सफेद रग के घोडे पर बैठी थी। महारानी ने अपने पास कुछ भी धन रखना उचित न समझा। उनकी पीठ पर उनका सात-आठ वर्षीय दत्तक पुत्र दामोदर राव एक कपडे से बधा था। किले से निकलते ही सबने 'हर हर महादेव' तथा 'जय शकर' का घोष किया और चल पडे। झासी मे जिसे भी महारानी के प्रस्थान करने का समाचार मिला, सभी आखो मे आसू लिये हुए मार्ग मे उनके दर्शनो के लिए खडे थे। यह देखकर उनका हृदय द्रवित हो उठा, किन्तु किसी प्रकार का विलम्ब सभी के लिए घातक हो सकता था, अत महारानी ने मौन रहकर घोडे को आगे बढा दिया।

इसके बाद महारानी केवल एक दासी, एक सईस तथा दस-बारह अश्वारोहियो के साथ एक रास्ते से अकेली आगे बढ गयी। सम्भवत सभी लोगो का एक साथ जाना उचित नही समझा गया होगा। शहर के उत्तरी द्वार पर जब पहरेदारो ने उन्हे रोका, तो वह 'यह टेहरी की सेना ह्यूरोज की सहायता के लिए जा रही है" कहती हुई घोडा दौडाती सरपट आगे निकल गयी। टेहरी की सेना भी अग्रेजो की सहायता के लिए आयी हुई थी। कुछ सैनिको ने उनका पीछा किया, तो वे मार डाले गये।

जब ह्यूरोज को महारानी के भाग जाने का पता लगा, तो मानो उसके हाथ के तोते उड गये। वह महारानी की इस वीरता और चतुरता की प्रशसा किये बिना न रह सका। उसने तुरन्त लेफ्टीनेंट वाकर को महारानी का पीछा करने का आदेश दे दिया। वाकर निजामशाही की सेना की एक पल्टन लेकर महारानी को पकडने के लिए चल पडा, किन्तु रात्रि भर लगभग 20-25 मील दौडते रहने पर भी वह महारानी को पकड पाने मे असफल रहा।

इस तरह शत्रु के व्यूह से महारानी का यह पलायन वस्तुत अचम्भित कर देने वाला था। इस विषय मे प्रख्यात अग्रेज इतिहासकार मेडोज टेलर ने लिखा है—"उस रात की यह यात्रा उन सभी के लिए जान को जोखिम मे डालने के समान थी, क्योकि '14 ड्रैगन' नामक

अग्रेज रिसाला तथा हैदराबाद कटिजेंट सेना के दस्ते सावधानी से शहर मे पहरा दे रहे थे। उनसे कही पर भी टक्कर होना निश्चय ही उनके लिए मृत्यु का कारण बन जाता। किन्तु वह वीर समूह किस प्रकार उन सबकी आखो मे धूल झोककर सकुशल बच निकला, यह एक ऐसा रहस्य है, जो अब तक नही खुल सका। इसमे कोई सन्देह नही कि रानी के पथ-प्रदर्शक अपने कठिन कार्यों मे अत्यन्त चतुर और कुशल थे। फिर रानी स्वय भी अत्यन्त निडर और अद्भुत घुडसवार थी। अत वह बिजली की समान तीव्रता से उस विस्तीर्ण मैदान की ओर बढती चली गयी, जिसके उस पार उनके लिए सुरक्षा की कुछ आशा हो सकती थी।"

किले पर अंग्रेजों का अधिकार

दूसरी प्रात 5 अप्रैल के दिन लेफ्टीनेंट बेग्री किले पर आक्रमण करने के लिए चल पडा, किन्तु आक्रमण किस पर करता, वहा से सभी लोग रात्रि मे ही जा चुके थे। किले मे प्रवेश करने पर अग्रेजी सेना को सर्वत्र नीरवता ही दिखाई दी। वहा किसी मनुष्य का नाम भी नही था। बिना किसी प्रकार का सघर्ष किये ही 5 अप्रैल 1858 को झासी के किले पर अग्रेजो का अधिकार हो गया, जब कि पिछले तेरह दिनो तक लगातार सघर्ष करने पर भी महारानी की सेना ने उन्हे किले के पास फटकने भी नही दिया था।

मोरोपन्त का दु खद अन्त

महारानी झासी से सुरक्षित बाहर निकल गयी, किन्तु उनके साथ जो सैनिक किले से बाहर निकले थे, उन्हें अग्रेजो की सेना ने घेर लिया। इनमे उनके अफगान और बुन्देले सैनिक थे। उन वीरो ने प्राणो का मोह त्याग कर शत्रु का सामना किया, किन्तु वे थे ही कितने, कुछ देर के सघर्ष के बाद अग्रेजो ने उन्हे निर्दयता के साथ मार डाला।

महारानी के पिता मोरोपन्त ताम्बे धन को एक हाथी मे लेकर

महारानी के पीछे भागते रहे। रास्ते मे उनका कई स्थानो पर शत्रुओ से सामना हुआ, हाथी को लेकर भागना कठिन कार्य था। उनके कई साथी सघर्ष करते हुए मारे गये। स्वय मोरोपन्त के पाव मे भी तलवार का घाव लगा। फिर भी साहस कर वह दूसरी प्रात दतिया जा पहुचे। वहा उन्होने किसी पनवाडी के घर शरण ली। इसका समाचार मिलते ही दतिया के राजा ने उन्हे बन्दी बनाकर अग्रेजो के पास झासी भेज दिया तथा उनका सारा धन जब्त कर लिया। झासी पहुचने पर बुन्देलखण्ड के राजनीतिक अभिकर्ता राबर्ट हैमिल्टन तथा ह्यूरोज ने उन्हे उसी दिन दोपहर बाद प्राय दो बजे राजमहल के सामने फासी पर लटका दिया।

अंग्रेजों द्वारा झासी की लूट

शहर मे प्रवेश करते ही अग्रेजो ने हिंसा और लूट का नग्न ताण्डव मचा दिया था। इधर महारानी लक्ष्मीबाई के पलायन से उनका आक्रोश झासी पर कहर बनकर टूट पडा। इस समय झासी वीरहीन-दीन और पराभूत हो गयी थी। वहा फिरगी नर-पिशाचो का सामना करने वाला कोई नही था। अत वे जून, 1857 मे हुए अग्रेजो के हत्याकाण्ड का प्रतिशोध निरीह-निरपराध झासीवासियो से लेने लगे। उन्हे जो भी झासीवासी दिखाई देता, तो उसे गोली मार देते थे। उन्होने शहर के कई भागो को अग्निसात कर डाला।

कहने का अर्थ यही हे कि पूरे झासी शहर मे अग्रेजो को जो भी पुरुष मिला, मार डाला गया। आग लगा दी गयी और निरीह लोग प्राण बचाने के लिए जहा स्थान मिला, जा छिपे। अग्रेज सैनिक शहर मे लूट मचाने लगे। वे जिस घर म जाते, घर वालो को अपना सारा धन उन्हे दे देना पडता। अन्यथा गोरे उसका सिर काट लेते या उसके गले मे फन्दा लगाकर पेड पर टाग देते तथा घर लूटकर उसमे आग लगा देते। यदि एक बार लूटा हुआ व्यक्ति दुबारा उनके हत्थे पड जाता, तो उसे गोली मार दी जाती। किन्तु गोरो ने किसी स्त्री या बच्चे की हत्या नही की। हा, अनेक स्त्रियो ने इस भय से आत्महत्या

कर ली कि गोरे उसे अपमानित करेंगे। इसके साथ ही जब अंग्रेज किसी व्यक्ति को गोली मारते, तो उसकी पत्नी उसे बचाने के लिए सामने आ खडी होती और मारी जाती। इसके बाद गोरे उसके पति को भी मार डालते। शत्रु हो या मित्र, किसी के भी सद्गुणो की प्रशसा होनी ही चाहिए, अत हमे इसी दिन घटी एक घटना के कारण उस अज्ञात नाम गोरे अधिकारी की प्रशसा करनी ही पडेगी, जिसने कुछ लोगो की रक्षा कर अपने मानवोचित गुणो का परिचय दिया। हुआ यह कि इस विनाश लीला के समय कुछ लोग जान बचाने के लिए शहर के एक बाग मे चले गये थे। जब गोरे वहा भी पहुच गये, तो उन भयभीत लोगो ने उनसे कहा—"हम इसी शहर के निवासी है। हमारा विद्रोह से किसी प्रकार का सम्बन्ध नही है। हम सर्वथा निरपराव है। कृपया हमे प्राणदान दीजिए।"

उन लोगो की बातो से उस अंग्रेज सेना अधिकारी का हृदय दया से भर उठा। उसने उन लोगो की रक्षार्थ बाग के द्वार पर ताला लगा कर वहा पहरा लगा दिया। निश्चय ही ऐसी उदारता के उदाहरण इतिहास मे विरले ही मिलते है। इसके साथ ही यह भी कहा जाता है कि अंग्रेजो को यद्यपि लूटपाट और आगजनी की पूरी छूट थी, तथापि स्त्रियो के साथ किसी भी प्रकार का दुर्व्यवहार न हो, इसके लिए सेना के उच्चाधिकारियो के कठोर आदेश थे। लूटपाट करने वाले गोरे सैनिको की हर टोली के साथ दो-दो भारतीय सैनिक भी रखे गये थे, जिन्हें आदेश दिया गया था कि यदि कोई भी गोरा सैनिक यदि किसी महिला का शील हरण करने का प्रयत्न करे तो उस सैनिक को तत्काल गोली मार दी जाए। इस प्रकार के व्यवहार करने वाले सैनिक को गोली मारने वाले के विरुद्ध कोई भी कार्यवाही नही की जाएगी।

अंग्रेजो ने इस लूट मे करोडो रुपये मूल्य की सम्पत्ति प्राप्त की, जिसमें सोना, चादी हीरे, जवाहरात आदि सभी सम्मिलित थे। मन्दिरो और मस्जिदो को भी नही छोडा गया। इसका वर्णन करते हुए हेनरी सिलवर्स्टन ने व्यग्य किया है—"युद्ध समाप्त होते ही हमारे अधिकारियो और सैनिको ने अपने कूतूहल की शान्ति हेतु इधर-उधर खोज आरम्भ

कर दी। इस धुन मे वे हर घर मे घुसकर अधेरे कोनो की भी तलाशी लेने लगे, किन्तु किसी लूटपाट के लिए नही, अपितु अनुसधान की प्यास बुझाने के लिए। जहा भी उन्हे सन्देह हुआ, दीवारे तथा धरती खोद डाली। मेरी दृष्टि मे नाना पदार्थों की इस लूट मे किसी धर्म परायण, सत्यपरायण सज्जन के लिए भी एक प्रकार के पदार्थों की लूट तो सर्वथा उचित तथा नैसर्गिक मानी जाती है और वे पदार्थ हैं— देवताओ की मूर्तिया, जो वहा देवालयो के खण्डहरो मे सभी जगह पडी मिलती थी।"

तीन दिन तक शहर लूटने की बारी अग्रेजो की थी, चौथे दिन यह अवसर मद्रासी पलटन को दिया गया। धन तो अब लोगो के पास रहा नही था, अत उसने ताबा, पीतल आदि जो कुछ भी मिला, वही लूट लिया।

समूचे झासी शहर मे इस महाविनाश के ताण्डव ने हाहाकार मचा दिया। सबसे बडा मुहल्ला हलवाईपुरा, जहा धनाढ्य लोगो की बस्ती थी, आग से जलकर स्वाहा हो गया था। उधर शहर पर अधिकार के बाद ह्यू रोज और कर्नल लोथ 86वी पलटन लेकर झासी के राजमहल पर अधिकार करने के लिए आगे बढे। वहा महारानी के कुछ विश्वास-पात्र वीर नियुक्त थे। उन्होने अपूर्व वीरता के साथ शत्रु दल का सामना किया, किन्तु वे सख्या मे बहुत कम थे। अग्रेजो ने दूर से ही आड लेकर उन पर गोलिया चलायी और राजमहल के आसपास के घरो मे आग लगा दी। वह आग राजमहल तक पहुच गयी। अत महारानी के सेवक अधिक देर तक शत्रु की विशाल सेना के सामने न टिक सके। महारानी का महल अग्नि की लपलपाती ज्वालाओ की भेट चढ गया। वहा प्रवेश करते ही अग्रेजो ने, जो भी मिला, उसे मार डाला। महल के अस्तबल मे पचास सैनिक छिप गये थे। अवसर पाते ही वे फिरगियो पर टूट पडे। एक बार तो इनके सामने अग्रेज घबरा गये। किन्तु भारी पलटन का सामना वे कब तक करते। अग्रेजी सेना ने उन सभी को मार डाला। प्रसन्नता से नाचते हुए फिरगियो ने भग्नप्राय राजप्रासाद पर अपना 'यूनियन जैक' फहरा दिया।

राजमहल पर यह धावा लूट के दूसरे दिन बोला गया। उस पर अधिकार करने के बाद वहा भी लूट मचायी गयी। वहा झासी राजवश के कई पीढियो से सचित बहुमूल्य रत्न कोष मे रखे गये थे। पन्ना की खानो के कई अमूल्य हीरे भी वहा सहेजकर रखे गये थे। अग्रेजो ने लूटने योग्य वस्तुओ को लूटा तथा शेष को नष्ट कर दिया। लूट केवल धन सम्पत्ति की हुई, जो पुन प्राप्त हो सकती है, किन्तु अमूल्य हस्तलिखित पाण्डुलिपियो सहित वहा स्थित पुस्तकालय जलाकर राख कर दिया गया, जिसमे झासी के प्रथम मराठा शासक रघुनाथ राव से लेकर गगाधर राव तक सभी राजाओ द्वारा सग्रहीत पुस्तको का भण्डार था, जिन्हे उन शासको ने अथक प्रयत्न और अपार धन व्यय कर इधर-उधर से एकत्र किया था।

आठ दिन के भीषण नरमेध और पैशाचिक लूटपाट के बाद अग्रेजो ने माफी का ढिढोरा पिटवाया। तब सडक पर पडे शवो का अन्तिम सस्कार हो सका। फिर हजारो नगरवासियो द्वारा मार्ग साफ कराये गये। मुहल्लो मे लगी आग को बुझवाया गया तथा इधर-उधर मरे पडे पशुओ को शहर के बाहर गड्ढो मे दबाया गया। माफी के ढिढोरे के अगले दिन राजमहल के सामने बाजार लगाया गया। तब लोगो ने अपनी-अपनी आवश्यकता की चीजे खरीदी। शहर मे जो लूट हुई, वह सेना की आज्ञा पर हुई थी। अत सभी लूटा हुआ सामान नित्य अग्रेजी छावनी मे नीलाम किया जाता। हाथी, घोडे तथा युद्ध सामग्री सिन्धिया की सरकार ने खरीदे। अन्य सामग्री दूसरे सेठो, जागीरदारो आदि ने ले ली।

झासी पर पुन अग्रेजो की सत्ता स्थापित हो जाने के बाद ह्यू रोज ने किला मेजर राबर्टसन के अधिकार मे दे दिया। अग्रेजो ने युद्ध मे घायल हुए अपने सैनिको के लिए एक चिकित्सालय खोल दिया तथा मृतको का पूरी धार्मिक परम्परा से अन्तिम सस्कार किया।

इस युद्ध मे अग्रेजो के 36 अधिकारी तथा 307 सैनिको की मृत्यु हुई। झासी के कुल 5000 लोग मारे गये। सम्भवत इसमे अंग्रेजो द्वारा लूट-पाट के समय मारे गये लोगो की सख्या भी सम्मिलित है।

अध्याय : 6

कालपी समर

झासी से पलायन के बाद महारानी लक्ष्मीबाई 5 अप्रैल, 1858 की प्रात 'भाण्डेर' नाम के गाव जा पहुची। वहा स्नान आदि करने के बाद उन्होंने नन्हे दामोदर राव को कुछ खिलाया-पिलाया। वह कालपी जाने की तैयारी कर रही थी। इस समय उनके पास न तो कोई सेना थी, न एक तलवार के अतिरिक्त कोई अस्त्र-शस्त्र ही। तभी उन्हे सूचना मिली कि उनका पीछा करता हुआ लेफ्टीनेट बाकर भाण्डेर के बिलकुल पास ही पहुच गया है। अत महारानी ने दामोदरराव को पुन पीठ पर बाध लिया और चल पडने को उद्यत हुई। इधर शत्रु तीव्रता के साथ उनका पीछा करने लगे, किन्तु महारानी ने ऐसी स्थिति मे वहा अधिक रुकना आत्मघाती समझा और शीघ्रता से चल पडी। जब अग्रेज उनके तम्बू के पास पहुचे, तो वह खाली मिला। इस भाग-दौड मे बॉकर स्वय घायल हो गया। अत उसे विवश होकर वापस लौटना पडा। 'ब्रिटिश इण्डिया' मे मारटिन लिखता है—

"ले० बाकर ने अपने रिसाले के साथ महारानी का पीछा किया और झासी मे प्राय 21 मील दूर उन्हे घेर लिया। उन्होने दूर से एक तम्बू लगा देखा, किन्तु जब वे वहा पहुचे, तो तम्बू खाली मिला। केवल नाश्ते का कुछ बचा हुआ अश ही वहा पडा दिखाई दिया, जिससे यह मालूम होता था कि रानी जलपान करती-करती वहा से लोप हो गई है। ले० बाकर ने फिर उनका पीछा करना आरम्भ किया और कुछ दूर पर ही अपने चार साथियो सहित रानी को घोडा दौडाते देखा, किन्तु इस भाग-दौड मे वह स्वय गम्भीर रूप से घायल हो गया, अत विवश होकर पीछा करना छोड वापस लौट आया।"

निश्चय ही महारानी का यह कार्य उनकी विलक्षण बुद्धि का परिचायक था। उनकी प्रशसा मे श्री पारसनीस ने लिखा है—

"वास्तव मे यही समय महारानी के युद्ध-कौशल की परीक्षा का था । एक ओर बाकर सरीखे अनुभवी अंग्रेजी वीर अपने चुने हुए सवारो को साथ लेकर वायुवेग से दौडते चले आ रहे थे और दूसरी ओर उनका सामना करके वहा से सुरक्षित भाग जाने का यत्न एक ब्राह्मण अबला कर रही थी । यह बडा ही आश्चर्यजनक दृश्य था । यद्यपि ऐसे समय मे जयलाभ की आशा करना महारानी के लिए एक असम्भव प्रयत्न जैसा ही था, तथापि उन्होने अपने अलौकिक साहस, दृढ निश्चय, अद्भुत शूरता और अद्वितीय रण-कौशल से एक रणशूर अंग्रेज योद्धा के भी दात खट्टे कर दिए । ज्यो ही बाकर साहब अपने घोडे को दौडाते हुए लक्ष्मीबाई को बढाते हुए आगे बढे, त्यो ही "

कालपी पहुंचना

इस प्रकार संघर्षों से जूझती हुई महारानी नदी-नालो, वनो-बीहडो, सुगम-दुर्गम मार्गों को पार करती हुई लगातार 24 घटो तक दौडती हुई रात्रि के लगभग बारह बजे कालपी पहुची । कैसी विडम्बना की बात है कि झासी की महारानी वीरागना लक्ष्मीबाई, जो कुछ ही दिन पूर्व तक राजप्रासाद के ऐश्वर्य की स्वामिनी थी, आज अपने नन्हे दत्तक पुत्र को पीठ पर बाधे शरण के लिए इधर-उधर भाग रही थी । इन चाबीस घण्टो मे उन्होने लगभग पौने दो सौ किलोमीटर की यात्रा तय की थी ।

कालपी नामक यह छोटा-सा ऐतिहासिक नगर यमुना नदी के तट पर बसा हुआ है । पहले इस शहर पर गोविन्दपन्त बुन्देले का अधिकार था । बाद मे यह उसी के एक वशज नाना गोविन्द राव की जागीर रहा । गोविन्द राव जालौन का शासक था । सन् 1806 में इसके साथ हुई सन्धि के अन्तर्गत ब्रिटिश सरकार ने इसे अपने अधिकार मे ले लिया । तब से यह अग्रेजो के ही अधिकार मे रहा था । बीच मे 1825 मे नाना पण्डित ने विद्रोह करके एक बार इस पर अपना अधिकार कर लिया था, किन्तु अग्रेजो ने झासी के तत्कालीन शासक रामचन्द्र राव की सहायता से इस पर पुन अपना अधिकार कर लिया था । इसकी चर्चा द्वितीय अध्याय मे की जा चुकी है । सन् 1857 के जून मास मे जब

झासी तथा कानपुर मे विद्रोह की ध्वजा फहराने के बाद विद्रोही सैनिक कालपी आये, तो कालपी की सेना ने भी विद्रोह कर दिया। विद्रोह होने पर वहा के डिप्टी कलेक्टर मुशी शिवप्रसाद को वहा से खदेड दिया गया। तब से इस समय तक वहा विद्रोहियो का ही अधिकार था। यहा का दुर्ग काफी सुरक्षित था। अत नाना साहब के भाई राव साहब भी इस समय यही थे। कालपी उस समय मातृभूमि की स्वाधीनता के पुजारी विद्रोहियो का गढ था। उन्होने पर्याप्त युद्ध सामग्री तथा सुरक्षा-व्यवस्था का प्रबन्ध किया था। इसीलिए महारानी यहा आई, जिसमे वह भावी सघर्ष का समुचित सचालन कर सके।

महारानी लक्ष्मीबाई के कालपी पहुचने पर पेशवा राव साहब ने उनका उचित सम्मान किया। उनकी रहने की समुचित व्यवस्था कर दी गई। यहा पहुचने के दूसरे दिन महारानी ने पेशवा राव साहब से भेट की। उस समय उनकी आखो मे आसू आ गए थे। उनके समक्ष अपनी शत्रुसहारिणी तलवार रखती हुई वह बोली—"यह तलवार आपके पूर्वजो ने ही हमे दी थी। उन्ही के पुण्य प्रताप से आज तक हमारे पूर्वजो ने और मैंने इसका सदा समुचित उपयोग किया, किन्तु अब आपकी सहायता और कृपा नही रही, अत अपनी इस तलवार को वापस रख लीजिए।" महारानी के इस कथन का सकेत अपने झासी युद्ध की ओर था, जिसमे राव साहब उनकी कोई सहायता नही कर पाये थे, किन्तु राव साहब ने ही वीर तात्या टोपे को उनकी सहायतार्थ भेजा था। झासी के दुर्भाग्य से तात्या वहा तक पहुच ही नही सके थे। महारानी के इस कथन पर राव साहब ने कहा—

"आपने झासी के शासको की परम्परा के अनुसार, उनकी कीर्ति के अनुसार वीरता का परिचय दिया है। प्रबल पराक्रमी अग्रेजो की सेना को तुच्छ मानते हुए उनके साथ भीषण युद्ध किया है। इस समय सभी आपके शौर्य तथा युद्ध कौशल का गुणगान कर रहे है। यदि आप जैसे वीर और स्वाभिमानी हमारी सेना के नायक हो, तो हमारा उद्देश्य शीघ्र फलीभूत हो जाएगा। हमारे पूर्वजो के काल मे सिन्धिया, होल्कर, गायकवाड, बुन्देले आदि सभी सरदार देश रक्षार्थ युद्ध मे अपने

प्राण तक देने के लिए सदा तत्पर रहते थे। इसीलिए मराठो की ध्वजा अटक तक लहराई थी। हमे भी आपके समान वीरो की सहायता मिल जाए, तो सन्देह नही कि वही समय पुन आ सकता है। अत आप इस तलवार को पुन स्वीकार कर पहले की तरह हमारी सहायता करे।"

राव साहब के कहने पर महारानी ने तलवार पुन उठा ली और उसे म्यान मे रख लिया। नाना साहब के साथ राव साहब भी महारानी के बालसखा और मुह-बोले भाई थे। अत बहिन ने भाई को हर प्रकार से सहायता देने का वचन दिया और यह भी बताया कि भविष्य मे दोनो ओर से किसी प्रकार की गलतफहमी नही होगी। गलतफहमी से उनका सकेत तात्या टोपे के झासी जाने पर किले मे उन्हे अग्रेजो का सहायक समझ लिये जाने की ओर था।

कालपी में तैयारियां

भाई से सहायता का वचन पाकर महारानी पुन अग्रेजो से युद्ध के लिए सन्नद्ध हो गई। इस विषय मे श्री पारसनीस लिखते है—

"महारानी ने राव साहब के कहने पर तलवार उठाकर अपनी म्यान मे रख ली। यद्यपि वे इस बात को भलीभांति जानती थी कि रणशूर और प्रतापी अग्रेजी सेना से युद्ध करने का क्या परिणाम होगा, तथापि 'हतो वा प्राप्स्यते स्वर्ग जित्वा वा मोक्ष्यसे महीम्' की उक्ति का स्मरण कर महारानी ने पेशवा की आज्ञा स्वीकार की और प्रकट रीति से समर करने का निश्चय किया।"

अग्रेजो के विरुद्ध विद्रोह की आग अभी ठण्डी नही हुई थी, जब स्वाधीनता प्रेमी भारतीयो को महारानी के इस सकल्प के विषय मे ज्ञात हुआ, तो अनेक राजे-महाराजे उनके इस पुनीत कार्य मे सहायता देने के लिए तत्पर हो गए। बानपुर नरेश, बादा के नवाब तथा अनेक जागीरदार उनकी सहायता के लिए अपनी-अपनी सेनाए भेजने लगे। कुछ ही दिनो मे सभी की सेनाए कालपी पहुच गई। प्रशिक्षण दिया जाने लगा। महारानी ने तात्या टोपे को भावी युद्ध का सेनापति बना दिया।

अंग्रेजों की लोहारी और कोच विजय

महारानी की तैयारियो की सूचना ह्यूरोज को मिली, तो उसने

कालपी पर आक्रमण करने का निश्चय किया। इसके लिए उसने अपने अधीन सेना को कई भागो मे विभक्त किया तथा प्रत्येक भाग का नियन्त्रण मेजर गाल, मेजर आर आदि अलग-अलग अधिकारियो को सौप दिया। इसके बाद 25 अप्रैल, 1852 को उसने उन्हें कालपी पर आक्रमण करने की आज्ञा दे दी। तभी उसे सूचना मिली कि लक्ष्मीबाई विशाल सेना लेकर झासी पर अधिकार करने के लिए प्रस्थान करने वाली है तथा इसीलिए बादा के नवाब और बान नरेश की सेना सहित कोच नामक गाव तक पहुंच गई है। अत 5 मई, 1858 को अग्रेजो की सेनाए कोच की ओर चल पडी। कोच से प्राय 15-16 किलोमीटर पर लोहारी का किला था। मराठो द्वारा बनाया गया यह किला पर्याप्त सुरक्षित था। अत अग्रेजो ने लगे हाथो पहले इस किले पर अधिकार कर लेना उचित समझा। इस किले पर अधिकार कर लेने से कोच पर आक्रमण करने मे भी उन्हे कठिनाई नही होती थी। अत ह्यूरोज ने पहले मेजर गाल को इसी किले पर आक्रमण करने के लिए भेज दिया। यह किला इस समय विद्रोही सैनिको के अधिकार मे था और उसकी रक्षा के लिए वहा अफगान सैनिक रखे गए थे। आदेश मिलते ही गाल की सेना ने किले पर आक्रमण कर दिया। दोनो ओर से घमासान युद्ध हुआ, किन्तु अग्रेजी सेना अन्तत विजयी हुई। इसमे अग्रेजी सेना के दो अधिकारी तथा अनेक सैनिक मारे गए।

इस किले पर अधिकार हो जाने के बाद ह्यूरोज ने अपनी सेना को कोच पर धावा बोलने का आदेश दिया। रोज इस तथ्य से परिचित था कि उसके प्रतिपक्षी सेना के अगले भाग को ही अधिक सुदृढ रखते है। उसने युक्ति से काम लेते हुए अपने सैनिको को प्रतिपक्ष की सेना के पिछले भाग पर आक्रमण करने की आज्ञा दी। अत अग्रेजो ने इसी प्रकार अपनी व्यूह-रचना की। दूसरे दिन सेना 14 मील दूर हटा ली गई। निश्चित स्थान पर बाई ओर प्रथम ब्रिगेड को रखा गया तथा इसके बाद बचे हुए लोगो को नागपुरा गाव मे नियुक्त कर दिया गया। दूसरी ब्रिगेड को इनके बीच मे चुनेर गाव मे रखा गया। दाहिनी ओर निजाम की सेना मेजर आर के सेनापतित्व मे रखी गई। कहने का यही

तात्पर्य है कि अंग्रेजो ने कोच गाव की पूरी तरह नाकेबन्दी कर दी। इधर अंग्रेज पूरी तरह व्यूह-रचना कर चुके थे, उधर उनके प्रतिपक्षी इससे सर्वथा अनभिज्ञ थे। वे बैठे हुए सहायतार्थ ग्वालियर से आने वाली सेना की प्रतीक्षा कर रहे थे। उनके पास इस समय बहुत कम सेना थी, जो कोच मे एक मैदान मे पेडो के नीचे पड़ाव डाले निश्चित बैठी थी।

विश्राम कर रहे सैनिको को जब अंग्रेजो के आने की सूचना मिली, तो वे सावधान हो गए और तोपे चलाने लगे। ये तोपे केवल सामने की ओर चल रही थी, जबकि अंग्रेजो ने उन्हे चारो ओर से घेर लिया था। अंग्रेजो की सेनाए चारो ओर से तोपो-बन्दूको से आक्रमण करने लगी। प्रतिपक्षी सेना इस चौतरफा आक्रमण के लिए तैयार नही थी। परिणामस्वरूप उसके लिए भाग जाना ही एकमात्र उपाय रह गया।

उस समय प्रचण्ड गर्मी थी, फिर भी अंग्रेजो ने युक्ति से काम लिया और विद्रोहियो को भागने पर विवश कर दिया। विद्रोहियो के भागने का मुख्य कारण सुव्यवस्था न हो पाना था। यद्यपि उनकी सख्या उस समय केवल 2000 थी। विद्रोहियो के भाग जाने के बाद कोच के किले पर भी अंग्रेजो का अधिकार हो गया। इस युद्ध मे गर्मी के कारण अंग्रेजो को जिन कठिनाइयो का सामना करना पडा, उसका वर्णन ह्यूरोज ने उस दिन की युद्ध विषयक आख्या मे किया है—

"प्रचण्ड गर्मी से हमारी सेना को जो हानि हुई, यदि वह न होती, तो वह शत्रुओ का पूर्ण विनाश कर देते। हमारी सेना के 11 सैनिक प्रचण्ड धूप के कारण ही काल के गाल मे समा गए। अनेक बेहोश होकर गिर पडे। उनकी दशा का वर्णन नही किया जा सकता। स्वय मुझे गर्मी के कारण चार बार अपना घोडा छाया मे ले जाना पडा। डाक्टरो ने मेरे सिर पर ठडे पानी की धार दी तथा गर्मी (लू) शान्त करने वाली ओषधिया दी, तब मुझे होश आया।" उसने आगे लिखा है—

"इन भले सैनिको ने कभी किसी बात की शिकायत नही की। भले ही धूप और थकान से उनकी शक्ति घटने लगी थी, फिर भी उन्होने शिकायत कर अपने अधिकारियो को चिन्ता में नही डाला। वे चाहे कितने ही क्लान्त हो, कितना ही कम सोये हो, बिगुल बजते ही तुरन्त

सहर्ष तैयार हो जाते थे। अपने शत्रु से पराजित होना या उसे पीठ दिखाना वे अपना अपमान समझते थे। सभी का एक ही संकल्प था कि हमारी शारीरिक शक्ति भले ही घट जाए, किन्तु हमारा उत्साह, मनोबल और आज्ञाकारिता की भावना कभी कम न होगी। प्राय वे इतने अशक्त हो जाते थे कि उनके लिए चलना भी कठिन हो जाता था, फिर भी वे उसकी परवाह नही करते थे। हमारे सैनिक कर्तव्य परायण, शान्त और आज्ञा का पालन करने वाले थे।"

श्री पारसनीस का मत है कि इस युद्ध की पराजय का कारण महारानी लक्ष्मीबाई का भाग न लेना था। बादा के नवाब तथा पेशवा राव साहब ने युद्ध-व्यवस्था के सभी अधिकार अपने पास रखे थे। न तो उन लोगो ने स्वय कोई अच्छी व्यवस्था की और न महारानी लक्ष्मीबाई को करने दी। परिणामस्वरूप उनकी सेना पराजित हो गई।

कालपी पर आक्रमण की तैयारियां

ह्यूरोज का मुख्य लक्ष्य कालपी पर विजय प्राप्त करना था। उसने कालपी पर धावा बोलने से पहले इस विषय पर गम्भीरता से विचार किया। वह निश्चय नही कर पा रहा था कि धावा बोला किधर से जाए। पर्याप्त विचार करने के बाद उसने हरदोई और उरई होते हुए कालपी पहुचना उचित समझा। अत उसने सेना को इसी मार्ग से आगे बढने का आदेश दे दिया। इस मार्ग मे भी उसे कई स्थानो पर विद्रोहियो का सामना करना पडा। इन सबका सामना करता हुआ वह सेना सहित आगे बढता चला गया। गर्मी का प्रकोप अपने पूरे वेग पर था। इसका दुष्परिणाम अग्रेज कोच मे भी भुगत चुके थे। इसी मार्ग मे ह्यूरोज ने कमाण्डर इन चीफ को एक पत्र लिखकर सेना सहित कर्नल मैक्सवेल को भी भेज देने की प्रार्थना की। अत 88वी पलटन के दो भाग, मिस्र सेना की एक पलटन और ऊटो का एक रिसाला भी ह्यूरोज की सहायता के लिए भेज दिया गया। पूरी तैयारी हो जाने के बाद उसने कालपी को भी चारो ओर से घेर लेने की योजना बनाई।

महारानी की तैयारी

कोच की पराजय के बाद पेशवा राव साहब के सभी सैनिक और

सेनापति कालपी पहुच गए थे। वहा के सघर्ष मे महारानी लक्ष्मीबाई को कोई अधिकार नही दिया गया था, जिसके कारण उनका क्षुब्ध होना स्वाभाविक था। भावी युद्ध की परिणति भी वैसी हो, यह उनके लिए असह्य था। अत उन्होने राव साहब से कहा—"कोच के युद्ध मे आपका प्रबन्ध अच्छा नही रहा। अब आपको सावधानी के साथ व्यवस्था करनी चाहिए। प्रबन्ध समुचित न होना, पर सेना की विजय प्राप्त करना असम्भव हे। अग्रेजो को अपनी सुव्यवस्था के कारण ही ये विजयें प्राप्त होती है। उनके अलग-अलग सेनापति अपने कार्यों मे सर्वथा निपुण है। उनके सैनिक भी युद्ध-विद्या मे निपुण है तथा आज्ञा का पालन करते है। उनका एक मुख्य अधिकारी है। सभी उसी की आज्ञा के अनुसार व्यवस्था करते हैं। अत आप भी, जब तक अपनी सेना का प्रबन्ध सुचारु रूप से नही करेंगे, यश श्री मिलना असम्भव होगा। सर्व प्रथम आपको उचित स्थानो पर मोर्चे बना लेने चाहिए तथा वहा पर अत्यन्त कुशल लोगो को नियुक्त कर देना चाहिए।"

पेशवा राव साहब को महारानी का परामर्श उचित जान पडा। अत उन्होने उचित मोर्चो का निरीक्षण किया। एक मोर्चे पर बादा के नवाब को उसकी सेना सहित नियुक्त कर दिया गया, दूसरे मोर्चे पर रुहेलखण्ड से आये विद्रोही रुहेलो तथा बगाल नेटिव इन्फेंट्री के विद्रोही सैनिको को रखा गया। मोर्चो पर तोपे लगा दी गई। अग्रेजी सेना को मार्ग मे रोकने के लिए बुन्देलो की सेना को नियुक्त किया गया।

राव साहब ने यद्यपि अपनी ओर से पूरी व्यवस्था कर ली। फिर भी उस प्रकार की व्यवस्था नही हो पायी, जैसी महारानी चाहती थी। इसमे कोई सन्देह नही कि उस समय उन सभी लोगो मे महारानी सर्वाधिक योग्य और अनुभवी सेनापति सिद्ध हो सकती थी, किन्तु राव साहब हो, अथवा बादा के नवाब या कोई अन्य, थे तो सभी पुरुष प्रधान समाज के ही सदस्य, भला वे एक स्त्री को युद्ध-सचालन का उत्तर-दायित्व कैसे सौपते! राव साहब ने यह कार्य अपने हाथ मे रखा। महारानी को सन्तुष्ट करने के लिए नाममात्र की सेना, जिसमे केवल ढाई सौ लाल वरदी वाले अश्वारोही सैनिक थे, उनके अधिकार मे दे

दी गई । इसके बाद उन्हे यमुना की ओर रहने का आदेश दिया गया । महारानी इससे सन्तुष्ट नही थी, अन्तत बहुत कहने पर ही वह ऐसा करने के लिए सहमत हुई । इस समय तात्या टोपे भी वहा नही थे । वह अपने रुग्ण पिताजी के दर्शनो के लिए चरखारी गए हुए थे ।

मुख्य युद्ध

15 मई, 1858 की प्रात कालपी पर आक्रमण करने के लिए अग्रेजो की सेना का एक छोटा-सा भाग कालपी से 9-10 कि० मी० दूर गुलावाली गाव पहुचा । इसकी सूचना मिलते ही पेशवा का एक सरदार छबीने ने उसका सामना करने का निश्चय किया । उसने बडी बुद्धिमानी से काम लिया । जैसे ही शत्रु सेना रणभूमि मे उतरी, छबीने ने शीघ्रता से उसका मार्ग बन्द कर दिया, जिससे अग्रेजी सेना को युद्ध सामग्री मिलनी बन्द हो गई । इस सघर्ष मे अग्रेजो की सेना की पच्चीसवी इफेंट्री के कई सैनिक मार डाले गए, कई घायल हुए और शेष भाग खडे हुए । विशाल अग्रेजी सेना को देखते हुए यह हानि उनके लिए कोई विशेष महत्त्व नही रखती थी । छबीने का यह कार्य प्रशसनीय भले ही था, परन्तु कोई बहुत बडी उपलब्धि नही थी । कदाचित उसकी व्यक्तिगत सेना सचालन मे यह प्रथम विजय रही हो, इस विजय मे वह फूल कर कुप्पा हो गया । कभी-कभी मनुष्य अभिमान के वश मे होकर अपने कार्यो को आवश्यकता से अधिक महत्त्व देने लगता है । यही हाल छबीने का भी हुआ । इस विजय से वह समझ बैठा कि उसने अग्रेजी सेना का समूल नाश कर दिया है । बेचारे ने विजय के उल्लास मे भग चढा ली और अपनी ही धुन मे जोर-जोर से कहने लगा—"तुम्ही ने झासी लूटी है और अब कालपी की ओर आ रहे हो । ठीक है, आओ, तुम्हारी खबर लेने के लिए ही हम तैयार बैठे है ।"

उधर अपने सैनिको की इस पराजय मे ह्यूरोज क्षुब्ध हो उठा । दूसरे ही दिन 16 मई को उसने नयी युद्ध नीति अपनायी । वह स्वय एक भारी सेना लेकर दयापुर गाव के पास जा पहुचा । यह उसे अपनी सेना के लिए उपयुक्त स्थान जान पडा, अत उसने अपनी सेना का

पडाव वही डाल दिया। इसके बाद उसने मेजर आर के अधीन दूसरी ब्रिग्रेड विद्रोहियो का सामना करने के लिए भेज दी। मेजर आर ने विद्रोहियो को परास्त करने के लिए धावा बोल दिया। दोनो ओर से भयकर युद्ध हुआ। इस युद्ध मे अग्रेजो का पलडा भारी रहा। कालपी पक्ष के अनेक सैनिक मारे गए और शेष रणभूमि छोडने पर बाध्य हुए। फिर भी इस युद्ध का परिणाम हार या जीत कहना युक्तिसंगत नही होगा, क्योकि हार-जीत का निर्णय तो कालपी मे अग्रेजो की जय या पराजय से होने वाला था।

झासी, कोच आदि पर हुए सघर्षों मे अग्रेजो को सफलता मिली जिसमे उनका उत्साह बढ गया। कालपी जाने का मार्ग दुर्गम देख ह्यूरोज ने तत्काल कालपी पर आक्रमण करना उचित न समझा, अत गुलावाली मे ही छावनी डाल दी। इस स्थान से कालपी बहुत दूर थी और बीच मे यमुना पडती थी। बीच के ऊबड-खाबड मार्ग से तोपे ले जाना सम्भव न था। विद्रोहियो के लिए यह स्थान अग्रेजो पर टूट पडने के लिए अनुकूल था।

उधर कालपी के सैनिक बार-बार पराजित होने पर भी हतोत्साहित नही हुए थे प्रत्युत् उनमे अग्रेजो से प्रतिशोध लेने की भावना और भी तीव्र हो गई थी। अत उन्होने अग्रेजो के विनाश का सकल्प ले लिया। इस भावना का वर्णन करते हुए श्री शान्तिनारायण ने लिखा है—

"फिर अग्रेजो के हाथो बार-बार पिट कर विद्रोही दल के रोष तथा दु ख का भी कुछ अन्त न था। इन्होने कालपी पहुचते ही यह दृढ निश्चय कर लिया था कि जो भी हो, इस बार अग्रेजो से अपनी इन हारो का बदला लेगे और उनका सर्वनाश किए बिना न रहेगे।"

इसी प्रकार श्री पारसनीस ने भी लिखा है—

"कोच मे विद्रोहियो ने जो हार खायी थी, उससे वे अधिक लज्जित और क्रोधित हुए थे। कालपी की सेना को इस समय अधिक स्फूर्ति चढ रही थी और यमुना की शपथ खाकर उन लोगो ने सकल्प किया कि अब या तो अग्रेजा सेना को पराजित करेगे अथवा हम ही रण मे प्राण दे देगे। इधर यह फौज क्रोध और अभिमान से मत्त अग्रेजी सेना

को मार भगाने का सकल्प किए हुए थी, उधर सरकारी अफसर ब्रिगेडियर स्टुअर्ड, ले० कर्नल राबर्टसन और लेफ्टीनेन्ट गार्डन आदि रणशूर पण्डित सेना के साथ कालपी की ओर बढ रहे थे।"

इस प्रकार दोनो पक्ष एक-दूसरे का मान-मर्दन करने के लिए पूरी तरह कटिबद्ध थे। ह्यू रोज गुलावली मे था और ब्रिगेडियर स्टुअर्ट, लेफ्टीनेंट कर्नल राबर्टसन, लेफ्टीनेंट गार्डन आदि योग्य और अनुभवी अंग्रेज अधिकारी सेना सहित कालपी पर अधिकार करने के लिए चल पडे। कालपी की सेना को जब इसका पता लगा, तो वह बिना एक पल का विलम्ब किये शत्रुओ का सहार करने के लिए उन पर टूट पडी। उनमे उत्साह की कोई कमी नही थी, किन्तु उत्साह एक भावना है, जो तभी फलीभूत होता है, जब उसे विवेक का भी सबल प्राप्त हो। कालपी की सेना ने विवेक मे काम नही लिया। वे आगे बढ गयी और उनका मोर्चा पीछे छूट गया। आगे के सैनिक यह भी भूल गये कि ऐसा करना आत्मघाती हो सकता है। अंग्रेजो की सेना पूरी तरह तैयार होकर सावधानी से इसी की प्रतीक्षा कर रही थी। उसने जब देखा कि प्रतिपक्षी सेना उनकी तोपो की मार के अन्दर आ गयी है, तो तोपे दागनी आरम्भ कर दी। एक ओर अंग्रेजो की तोपे आग उगल रही थी, और दूसरी ओर कालपी के सैनिक बन्दूकों से लड रहे थे। इसका क्या परिणाम हो, अनुमान सरलता से लगाया जा सकता है। यद्यपि कालपी की सेना अत्यन्त वीरता के साथ लडी, तथापि तोपो की मार के सामने अधिक देरी तक नही टिक सकी।

रणचण्डी रूप

इस युद्ध के प्रथम चरण मे ही कालपी को अपार जन-हानि हुई। सेना के अग्रभाग की इस पराजय का समाचार शेष सेना ने सुना, तो उसका साहस जाता रहा। यहा तक कि पेशवा राव साहब और बादा के नवाब भी युद्ध-भूमि से भागने लगे। महारानी लक्ष्मीबाई को अपने इतने बडे सहयोगियो से इस व्यवहार की आशा नही थी। उन्हे यह देखकर भारी दुःख हुआ। फिर भी उन्होने विवेकपूर्वक उन लोगो को उनका कर्तव्यबोध कराया और उनका साहस बढाया। अत उन लोगो

मे साहस का सचार हुआ और उनके रणभूमि छोडने को उद्यत पग रुक गये। उन सबका साहस-वर्धन कर वह स्वय घोडे पर बैठकर रणचण्डी के समान अपने अश्वारोही सैनिक-गणो को साथ लेकर रणभूमि मे आगे बढ गयी। अग्रेजी सेना के दाहिनी ओर जाकर उन्होने अत्यन्त तीव्रता से उस पर धावा बोल दिया। उनका यह धावा इतनी तीव्रता से और सहसा हुआ था कि अग्रेजो को सभलने का भी अवसर न मिला। अत उसे पीछे हटना पडा। महारानी ने यह आक्रमण तीव्रता के साथ ही अत्यन्त व्यवस्थित शैली से भी किया था। उनके इस युद्ध-कौशल से अग्रेजो की तोपे कुण्ठित हो गयी।

महारानी साहस की मूर्ति सिद्ध हो रही थी। वह आगे ही आगे बढती चली गयी। एक बार तो वह तोपो से केवल 20 फीट की दूरी पर पहुच गयी। उनका यह रूप देख कालपी के सैनिको की मानो तन्द्रा भग हुई। उन्हे स्वय पर लज्जा होने लगी। महारानी की इस वीरागना रूप को देखकर उनका पौरुष जाग पडा। अत वे भी शत्रु सेना पर टूट पडे। दोनो ओर से वीरघस्मर समर छिड गया। महारानी विद्युत वेग के समान शत्रु दल का सहार कर रही थी। उन्होने अपने घोडे की लगाम दातो मे दबा ली थी। और दोनो हाथो मे शत्रु शोणित की प्यासी तलवारे चमक रही थी, जिनसे फिरगियो का सर्वनाश हो रहा था। उनके इस रूप मे अग्रेजो के अपने काल के दर्शन होने लगे। उनके तोपची रणभूमि छोडकर पलायन करने लगे। घोडो की पीठो पर रखा हुआ तोपखाना पृथ्वी मे जा गिरा।

अपने तोपचियो को भागते देख ब्रिगेडियर स्टुअर्ट तोपखाने के पास गया। उसने उन्हे अनेक प्रकार से उत्साहित किया। तब तोपची पुन कार्य करने लगे। इस युद्ध से ऐसा लगने लगा था कि अग्रेज निश्चित ही हार जाएगे। श्री पारसनीस ने लिखा है—

"उनके इस प्रचण्ड आक्रमण से अग्रेजो की फौज एकदम पीछे हट गयी। बडे-बडे अग्रेज शूरवीर कट-कटकर धराशायी होने लगे। इस बार महारानी ने इतनी बुद्धिमानी और सुव्यवस्थित रीति से युद्ध किया कि उनके शौर्य के कारण 'लाइट फील्ड' तोपो के गोले कुछ देर

के लिए बिलकुल बन्द हो गये और उनके गोलन्दाज स्तब्ध होकर जैसे के तैसे खडे रह गये। इतना ही नही, किन्तु महारानी उन तोपो से 20 फीट के अन्तर तक मारती-काटती चली गयी। महारानी की इस विलक्षण वीरता को देखकर कालपी की दूसरी सेनाओ का भी साहस बढा और उन्होने फिर बडे वेग से अग्रेजी सेना पर चढाई कर दी। दोनो ओर से घमासान युद्ध मचा। जिस समय महारानी लक्ष्मीबाई अपने चपल घोडे को बढाती हुई और अपनी शमशेर के हाथ बडी चालाकी से चलाती हुई अग्रेजी तोपखानो पर चढी, उस समय उनकी वह वीरश्री, वह आवेश, वह मर्दूमी और बहादुरी देखकर पेशवा के दूसरे सेनानायक भी फडक उठे और वे भी अग्रेजी सेना पर इस प्रकार टूट पडे—जैसे जौ के खेत पर टिड्डी दल टूट पडता है। उस समय जो घनघोर युद्ध हुआ, उससे जान पडता था कि बलवाइयो की जीत होने मे विलम्ब नही है। महारानी दातो से घोडे की लगाम पकडे दोनो हाथो मे सडामड तलवार चला रही थी ।"

ह्यू रोज का युद्ध मे उतरना

ह्यू रोज को जब यह सूचना मिली कि महारानी कालपी की सेनाओ के साथ युद्ध-भूमि मे अग्रेजों की काल सिद्ध हो रही है और उनके कारण अग्रेजो की तोपे बन्द हो गयी हैं, तो वह स्वय भी रणभूमि मे जाने को तैयार हो गया। उसने अपनी ऊटो की सेना साथ ली और तुरन्त युद्धभूमि मे उतर गया। उसके आते ही अग्रेजो की स्थिति सुधर गयी। उसके साथ आये ऊट-सवार कालपी के सैनिको पर गोलिया चलाने लगे। इससे कालपी की सेना दुर्बल पड गयी और तितर-बितर होने लगी। कालपी वालो की जीती हुई बाजी ह्यू रोज के आते ही हार मे बदलने लगी। महारानी को यह देखकर कि कालपी के सैनिको के पाव उखडने वाले है, भारी दु ख हुआ। फिर भी उन्होने उनका उत्साह बढाने का प्रयत्न किया तथा उन्हे युद्ध-भूमि मे डटे रहने का परामर्श दिया, किन्तु उन्हें कोई सफलता नही मिली। गुरिल्ला युद्ध करके महारानी और आगे बढकर अग्रेजो के भागने का मार्ग रोक

देना चाहती थी, जिससे उनका सर्वसंहार किया जा सके, किन्तु पेशवा के सैनिकों में अब और साहस नहीं रह गया था; उन्होंने आगे बढ़ना अस्वीकार कर दिया, अत विवश होकर महारानी को वापस लौटना पड़ा। यदि ऐसा किया जाता, तो बहुत सम्भव था कि वहां खड़ी शत्रु सेना का सर्वनाश हो जाता। एक अंग्रेज ने भी इस तथ्य को स्वीकार करते हुए लिखा है—"यदि केवल 15 मिनट और मिल जाते, तो विद्रोहियों द्वारा हम सब मारे जाते। उस दिन केवल स्वस्थ-दुरुस्त डेढ़ सौ ऊंटों ने अंग्रेजों को बचाया।"

वस्तुत महारानी लक्ष्मीबाई इस युद्ध में रणचण्डी रूप में सामने आयी। उनकी इस अप्रतिम वीरता का वर्णन करते हुए वीर विनायक दामोदर सावरकर ने '1857 का स्वतन्त्रता युद्ध' में लिखा है—

"हाथ में खड्ग ले बिजली के वेग से महारानी आगे घुस पड़ी। और अपने रक्त वेशधारी घुड़दल सहित वह अंग्रेजों की दायीं बगल पर टूट पड़ी, अब तक विजयी हुई अंग्रेजों की दायीं बगल एकदम ठण्डी पड़ी। रानी का हमला इतना वेगवान था, पीछे हटने के अतिरिक्त अंग्रेजों को अन्य मार्ग न रहा। इक्कीस वर्ष की शूर युवती का मारा हुआ धडल्ला, उसका प्रबल वेग से उड़ने वाला घोड़ा, दायें-बायें अंगों पर प्रहार करते हुए शत्रु को खटाखट काटने वाली उनकी तलवार, देखकर किसके शरीर में चैतन्य संचरित न होगा। अंग्रेजों के घूमते हुए तोपखाने के गोलन्दाज एक के पीछे एक मारे जाने लगे।"

पेशवा के सैनिकों के व्यवहार से महारानी को बड़ी हताशा हुई। फलत उन्हें वापस लौटना पड़ा और वह पेशवा राव साहब की छावनी में चली आयी। उनके युद्ध-भूमि से लौटते ही कालपी के सेना के पैर उखड़ गये। शत्रुओं ने उनका संहार करना आरम्भ कर दिया, जहां जो मिला, मार डाला गया। हजारों सैनिक अपने प्राणों की रक्षा के लिए यमुना के तटवर्ती बीहड़ों में चले गये।

कालपी दुर्ग पर अंग्रेजों का अधिकार

युद्ध-भूमि से विद्रोही वीरों की पराजय के बाद अंग्रेजों के लिए

कालपी के किले पर अधिकार करना शेष रह गया था। इसके लिए ह्यू रोज ने कार्ययोजना बनाई। योजनानुसार उसने ब्रिगेडियर-स्टुअर्ड को यमुया के तट की ओर से भेजा, जहा पराजित विद्रोहियो ने शरण ले रखी थी और स्वय सीधे कालपी को चल पडा।

कालपी के किले मे इस समय पेशवा का अधिकार था। वहा प्रचुर मात्रा मे युद्ध सामग्री एकत्रित की गयी थी। वहा पेशवा की विशाल सेना भी थी, जिसमे उपर्युक्त युद्ध से भागे हुए सैनिक भी मिल गये थे। 24 मई 1858 को अग्रेजो की सेना ने कालपी मे प्रवेश किया। प्रवेश करते ही अग्रेजी तोपखाने वाली सेना के कर्नल मैक्सवेल ने पेशवा राव साहब के सैनिको पर तोपो से आक्रमण कर दिया। पेशवा की सेना ने भी प्रत्युत्तर मे तोपो का प्रयोग किया, किन्तु अग्रेजो के सामने उनकी एक न चली। अग्रेजो न सर्वप्रथम उनकी सेना के चार हाथी अपने अधिकार मे ले लिये और फिर नगर के सामने मैदान मे अपना शिविर लगा दिया। इसके बाद उनकी सेना शहर मे प्रवेश कर गयी। यह देखते ही कालपी की सेना युद्ध-भूमि से भागने लगी। कर्नल गाल ने हैदराबाद कटिजेंट सेना को साथ लेकर उसका पीछा किया। कालपी की सेना भागने मे सफल हो गयी, किन्तु उनके कई हाथी, घोडे, ऊट तथा युद्ध सामग्री अग्रेजो के हाथ लग गयी। 24 मई को इगलैण्ड की महारानी का जन्मदिवस भी था, अत इस दुहरी प्रसन्नता के अवसर पर अग्रेजो ने अपने शिविर वाले मैदान मे तोपे चलाकर अपना मनोरजन किया।

अग्रेजो को कालपी मे विजयश्री तो मिली ही, साथ ही किले मे अपार युद्ध सामग्री भी प्राप्त हुई। अग्रेजो के शहर मे प्रवेश करते ही राव साहब, महारानी लक्ष्मीबाई, बादा का नवाब आदि सभी प्रमुख सेनापति वहा से पलायन कर गये थे। अत अग्रेजो ने कालपी शहर तथा उसके किले पर अधिकार कर लिया।

दिल्ली, मेरठ, झासी आदि सभी स्थानो पर विद्रोह दबा दिया गया था। अत कालपी मे पेशवा की जो सेना रह गयी थी, उसने भी किसी प्रकार का प्रतिरोध न करना ही श्रेयस्कर समझा। वास्तविक

अर्थों मे वहा रही सेना को सेना कहना ही युक्तिसगत नही होगा। विद्रोहो मे बडे-बडे वीर योद्धा या तो मारे गये या बन्दी बनाये जाने के भय से एक से दूसरे स्थान तक मारे-मारे फिर रहे थे। कई लोग वेश बदलकर घूम रहे थे और कुछो ने छद्म वेश मे आजीविका के अन्य साधन अपना लिये थे। इस समय पेशवा राव साहब की सेना मे जो सैनिक थे, वे सर्वथा नये और अनुभवहीन थे। ऐसे लोग अवसर मिलते ही स्वय भी लूटपाट करने मे पीछे नही रहते थे। इस विषय मे श्री पारमनीस ने लिखा है—

"जो नये सिपाही भरती किये गये थे, उन्हे युद्ध करने की रीति मालूम न थी। नवसिखिए होने के कारण वे युद्ध मे नही टिक सकते थे। सच बात तो यह है कि कालपी की फौज मे अच्छे और सच्चे वीर थे ही नहीं, चोर-लुटेरे ही उसमे अधिक रह गये थे। उनका लडाई की ओर बिल्कुल ध्यान नही था, लूटमार करने पर ही अधिक ध्यान था। कालपी मे तीन दिन तक लडाई होने के बाद ज्यो ही उन लोगो को मालूम हुआ कि अब अग्रेजो की जीत हुई और पेशवा हार गये, त्यो ही सैकडो सिपाही युद्ध छोडकर शहर मे लूटमार करने लगे। उन्होने शक्कर के कारखानो और सबकी जिसो को बडी दुर्दशा के साथ लूटा। इतने ही मे तीसरे दिन अग्रेज लोग शहर मे घुसे और देखते ही देखते उन्होने उन लुटेरो को कतल कर डाला। अग्रेजो को लूटी हुई सामग्री अनायास मिल गयी।"

गत एक वर्ष से राव साहब और तात्या टोपे ने दुर्ग मे युद्ध सामग्री का विशाल भण्डार सचित किया हुआ था। स्वय एक अग्रेज ने लिखा है कि किले मे मिली युद्ध सामग्री का तत्कालीन अनुमानित मूल्य दो लाख रुपयो से भी अधिक था। इसमे दो बडी तोपो सहित कुल पन्द्रह तोपे मिली। चोबदार विलायती गोलियो का एक ढेर प्राप्त हुआ। कई छप्परो के नीचे तोप गोलो की निर्माणशालाए और कार्यशालाए स्थापित की गयी थी। वहा पडे मिले भट्ठी, धन, धौंकनी आदि सभी आयुध उपकरण इगलैण्ड मे बने हुए थे। मिट्टी के साचो मे ढालकर बनाये हुए कई पीतल के बने हुए गोले भी वहा प्राप्त हुए।

इन सबसे स्पष्ट था कि वहा आयुध निर्माण पूरे वेग से चल रहा था ।

कालपी की इस विजय को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्वीकार करते हुए लार्ड कैनिंग ने 24 मई के ही दिन ह्यू रोज के कार्यो की प्रशसा मे उसके लिए लिखा था—"आज तक आपको युद्धो मे जो यश प्राप्त हुआ है, उसमे कालपी विजय सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है । इस विजय के लिए मैं आपका तथा आपके वीर सैनिको का आभार व्यक्त करता हू ।"

इसके बाद 'कमाण्डर इन चीफ' कालिन कैंबेल सेना के दो भाग कर ह्यू रोज को ग्वालियर तथा झासी की व्यवस्था हेतु भेजना चाहता था । अनवरत सघर्षों से ह्यू रोज अत्यधिक थक गया था । उसने अवकाश पर कुछ समय तक बम्बई जाने का निर्णय लिया । विरोधी पक्षो की पराजय का सबसे बडा कारण उनमे व्यवस्था का अभाव तथा अनुशासन न होना था, जबकि अग्रेजी सैनिक पूर्णत अनुशासित और व्यवस्थित थे । इसीलिए 1 जून 1858 को ह्यू रोज ने अपने सैनिको के इन गुणो की प्रशसा मे कहा था—"अग्रेजी सेना की आज्ञाकारिता तथा सुप्रबन्ध के कारण ही इन विजयो का प्राप्त होना सम्भव हुआ ।"

कालपी मे राव साहब की सेना के पास आयुधो का जो भण्डार था, यदि उनकी सेना मे अनुशासन होता, अथवा यो कहना चाहिए कि उनके सेनापतियो मे योग्यता का सद्भाव होता, तो उनकी पराजय असम्भव थी । इन्ही गुणो के अभाव मे उन्हे पराजित होकर कालपी छोडने के लिए बाध्य होना पडा । अब इस बहस मे पडने से कोई लाभ नही, क्योंकि इतिहास का निर्माण 'यदि ऐसा होता' जैसे सम्भावनासूचक शब्दो से नही होता, वह तो यथातथ्य का लेखा-जोखा होता है । कालपी की पराजय से भी हमारी चरित-नायिका वीरागना महारानी लक्ष्मीबाई हतोत्साहित नहीं हुई । उन्होने अन्तिम सास तक स्वाधीनता हेतु सघर्ष की ज्वाला प्रज्वलित रखी ।

अध्याय : 7

ग्वालियर में वीरांगना की अन्तिम गर्जना

जून, 1857 से प्राय एक वर्ष तक कालपी, बादा, सागर आदि स्थानो पर अग्रेजी साम्राज्य का सूर्य अस्त हो गया था। अग्रेज अपनी इस पराजय से क्षुब्ध हो गये थे। अत उन्होने अपनी पूरी शक्ति इन स्थानो पर अधिकार करने मे लगा दी। परिणामस्वरूप इन स्थानो पर भी स्वाधीनता प्रेमी विद्रोहियो की सत्ता स्थायी न रह सकी। अग्रेजो के इन क्षेत्रो पर पुनरधिकार करने मे उनके योग्यतम सेनापतियो—ह्यूरोज तथा ह्विटलाक—की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। ह्यूरोज ने नर्मदा का तटवर्ती समस्त भू-भाग तथा झासी, कालपी आदि को अधिकार मे किया और ह्विटलाक ने बादा और करवी मे विजय प्राप्त करने के बाद कालपी विजय मे भी योगदान किया। विजित क्षेत्रो पर उन्होने अपना पूरा नियन्त्रण स्थापित कर लिया। कालपी पर अग्रेजो की विजय के बाद राव साहब, लक्ष्मीबाई, बादा का नवाब आदि वहा से विदा लेकर पुन सघर्षक राह के पथिक बन गये थे।

गोपालपुर का पडाव

कालपी पर अग्रेजो का अधिकार अवश्यभावी देख राव साहब के साथ ही महारानी लक्ष्मीबाई आदि ने भी वहा से पलायन करना उचित समझा। पेशवा और महारानी लक्ष्मीबाई कालपी से भागकर ग्वालियर से प्राय 75 किलोमीटर दूर गोपालपुर नामक गाव मे पहुचे। पहले ही उल्लेख किया जा चुका है कि कालपी के पराभव के समय वीर श्रेष्ठ तात्याटोपे अपने पिता से मिलने जालौन के पास चारावारी गये हुए थे। इधर उन्हे यह समस्त वृत्तान्त ज्ञात हुआ, तो वह भी गोपालपुर आ गये। कुछ ही दिनो मे इधर-उधर भटकते-भागते बादा के नवाब भी वही पहुच

गये । कालपी की पराजय उन सभी के लिए एक कडवा अनुभव थी, किन्तु अभी वे निराश नही हुए थे । उनके अन्त के किसी कोण मे अब भी विजय की आशा शेष थी । इस समय परिस्थितया उनके सर्वथा प्रतिकूल हो गई थी, साधनो का अभाव जैसा हो गया था, प्रबल शत्रु पीछे पडा हुआ था, ऐसी दशा मे उनका शान्त रहना भी हानिकारक ही था, कुल मिलाकर उनके लिए एक अनिश्चयात्मक स्थिति उत्पन्न हो गयी थी ।

भावी योजना पर मन्त्रणा

इन्ही सब बातो पर विचार करने के लिए महारानी लक्ष्मीबाई, राव साहब, तात्या टोपे, बादा नवाब तथा उनके प्रमुख सहयोगियो ने परस्पर मन्त्रणा की । महारानी लक्ष्मीबाई यह जानती थी कि अग्रेजो से युद्ध करना इस समय उनके लिए सरल नही है । अपने मत को रखते हुए उन्होने स्पष्ट किया कि 'आज तक जितने भी वीरो ने इतिहास का निर्माण किया, उन्हे सुदृढ दुर्गो का आश्रय लेना पडा था । शिवाजी महाराज इसके प्रत्यक्ष प्रमाण है ।' दुर्भाग्य से उस समय किसी भी किले पर उनका अधिकार नही रह गया था । अत महारानी ने सर्वप्रथम किसी दुर्ग पर अधिकार करने का प्रस्ताव रखा ।

महारानी के इस प्रस्ताव से सभी सहमत हो गये । विपत्ति के समय मे ऐसा करना उनके लिए अत्यन्त आवश्यक था । उनकी इस बुद्धिमत्ता की प्रशसा मे कर्नल मैलेसन के शब्द उल्लेखनीय है—

"विद्रोहियो के नेताओ के लिए यह समय भीषण सकट का तथा अत्यन्त चिन्तनीय था, किन्तु विपत्ति का समय आने पर, उपाय भी सूझ जाते हैं । यह उपाय बुद्धिमती महारानी के मस्तिष्क मे आया । यह बात सन्दिग्ध है कि यदि महारानी उपाय न बताती, तो किसी अन्य के मन मे यह उपाय आता अथवा नही। इन चारो के पूर्व कृत्यो को देखकर स्पष्ट है कि राव साहब और बादा के नवाब को तो यह उपाय कभी नही सूझ सकता था । अत इन दोनो के विषय मे किसी के व्यवहार और विवेक से ऐसा नही मालूम पडता था कि वे इस भयकर प्रसग का निराकरण सकते हैं ।

अब शेष दोनो मे थोडी देर के लिए तात्या टोपे को भी छोड दे। हमारा यह आशय नही कि तात्या टोपे यह उपाय नही ढूढ सकते थे, न ही हम यह कहते हैं कि उनमे उपाय-चिन्तन की बुद्धि नही थी। तात्या टोपे की आत्मकथा से भी ज्ञात होता है कि उन्होने स्वय स्वीकार किया है कि यदि उस समय महारानी न होती, कदाचित यह उपाय अन्य किसी को नही सूझता।"

स्वपक्षियो द्वारा की गयी प्रशसा तो औपचारिकता अथवा पक्षपात पूर्ण भी हो सकती है, किन्तु जब कोई विरोधी पक्ष का जन प्रशसा करता है, तो इसे उपेक्षित नही किया जा सकता। वस्तुत ऐसे समय मे एक नयी दिशा दिखाकर महारानी ने अपनी व्युत्पन्नमति का अच्छा परिचय दिया, इसमे कोई सन्देह नही है कि उनके इस प्रस्ताव को सभी ने सहर्ष स्वीकार कर लिया। इसके बाद ग्वालियर पर आक्रमण करना निश्चित हो गया।

ग्वालियर रियासत

इसी प्रसग मे यहा ग्वालियर रियासत की तत्कालीन स्थिति तथा 1857 के विद्रोह मे उसकी भूमिका का परिचय देना आवश्यक है। सन् 1844 मे ग्वालियर के साथ युद्ध मे विजय के परिणामस्वरूप वहा भी अग्रेजो के पाव जम गये थे। इस युद्ध के बाद हुई सन्धि के अनुसार ग्वालियर दरबार मे अग्रेजो का प्रभुत्व स्थापित हो गया था तथा वहा के किले पर भी अग्रेजो का अधिकार हो गया था। सन् 1853 मे जयाजीराव सिन्धिया को रियासत के सभी अधिकार दे दिये गये, किन्तु उन्हे अग्रेजी सरकार के रेजीडेंट के परामर्श से ही समस्त कार्य करना पडता था। इस समय 1858 मे जयाजीराव केवल 23 वर्ष के युवक थे। उनके सभी कार्य दिनकर राव राजवाडे करता था। सन् 1857 मे जब दिल्ली आदि मे स्वतन्त्रता-सग्राम का खुला श्रीगणेश हुआ और इसका समाचार ग्वालियर पहुचा, तो ग्वालियर स्थित अग्रेजी की कटिंजेंट सेना तथा सिन्धिया की अपनी दस हजार सेना थी। उस समय सिन्धिया ने अपनी सेना को लेफ्टीनेंट गवर्नर की सहायता के लिए आगरा भेज दिया

तथा मराठा सेना की एक टुकडी इटावा भेज दी। किन्तु 14 जून, 1857 को ग्वालियर स्थित कंटिजेंट सेना ने छावनी मे विद्रोह कर दिया। छावनी मे आग लगा दी गयी। सिन्धिया ने अंग्रेज सैनिको को बचाने का बहुत प्रयत्न किया फिर भी कई अंग्रेज सैनिकतथा अधिकारी मार डाले गये। इससे घबराकर कप्तान मैकफर्सन सिन्धिया के पास आया और उसने प्रस्ताव रखा कि अंग्रेजो के स्त्री-बच्चो को सेना के साथ आगरा भेज देना चाहिए। अत ऐसा ही किया गया। सेना के विद्रोह से जयाजीराव सिन्धिया भी चिन्तित होकर मैकफर्सन को भी आगरा चले जाने की आज्ञा दे दी।

चम्बल से आगे हिंगोना गाव मे विद्रोही सैनिक रुके हुए थे। उनका नेता जहागीर खा ग्वालियर रियासत का सेवक रह चुका था। वह चाहता था कि जो अंग्रेज ग्वालियर से आगरा जा रहे है, उन्हे चम्बल के बीहडो मे ले जाकर मार डाला जाए। सिन्धिया ने अंग्रेजो की सुरक्षा के लिए पहले ही पर्याप्त सुरक्षा-प्रबन्ध कर दिये थे। अत अंग्रेजो का यह दल सुरक्षित आगरा पहुच गया। इसके बाद भी कई अंग्रेज सुरक्षित आगरा भेजे गए। विद्रोही सैनिको ने जयाजीराव सिन्धिया से बार-बार अनुरोध किया कि वह अंग्रेजो का पक्ष न ले और उनकी सहायता करे। सिन्धिया अंग्रेजो के पक्के भक्त थे, अत उन्होने विद्रोहियो को किसी प्रकार का सहयोग नही दिया। उधर आगरा मे अंग्रेजो की स्थिति भी अधिक सुदृढ नही थी। ऐसी स्थिति मे यदि वहा विद्रोही अपना धावा बोल देते, तो अंग्रेजो का सहार हो जाना निश्चित था। इसी स्थिति पर विचार कर मेजर मैकफर्सन ने सिन्धिया से वहा सेना भेजने का अनुरोध किया तथा प्रार्थना की कि वह विद्रोहियो को ग्वालियर से आगरा न पहुचने दे। सिन्धिया ने ग्वालियर के विद्रोहियो को समझा-बुझाकर शान्त किया और आगरा मे अंग्रेज सुरक्षित बने रहे।

सिन्धिया सरकार के कहने पर कुछ दिन तो ग्वालियर की कंटिजेंट सेना के विद्रोही चुप रहे, किन्तु फिर वे सिन्धिया को अपने साथ मिलाने का प्रयत्न करने लगे। उन्होने सिन्धिया से कहा भी कि या तो वह उनके साथ मिलकर आगरा पर आक्रमण करने के लिए चल पडें या

उन्हें आर्थिक सहायता दें। इस समय सिन्धिया की स्थिति चिन्तनीय हो गयी थी, दीवान दिनकर राव तथा दो अन्य सरदारो के अतिरिक्त सभी लोग विद्रोहियो के समर्थक बन गये थे और सभी सिन्धिया को अपने पक्ष मे करने का प्रयत्न कर रहे थे। ऐसे समय मे दीवान दिनकर राव ने बडी चतुरता से काम लिया। उसने विद्रोहियो को कभी अपने विरुद्ध नही होने दिया तथा उन्हे बातो मे खोए रखा। यही नही, उसने विद्रोहियो पर यह बात भी प्रकट नही होने दी कि सिन्धिया दरबार के अधिकतर सरदार भी सिन्धिया के विरोधी बन गए हैं। ऐसे समय मे इस प्रकार की गोपनीयता बनाए रखना नितान्त आवश्यक था, यदि दरबार की स्थिति से विद्रोही सैनिक अवगत हो जाते, तो सम्भवत वे सिन्धिया सरकार के विरुद्ध भी विद्रोह कर देते। पेशवा नाना साहब के कानपुर मे विजयी होने से सिन्धिया के दरबारी भी स्वाधीन हो जाना चाहते थे। वे सभी लोग अग्रेजो के विरुद्ध परामर्श करते रहते थे।

ऐसी स्थिति मे सिन्धिया के विरुद्ध विद्रोह न होने का सारा श्रेय दीवान दिनकर राव के पक्ष मे जाता है, क्योकि वही राज्य का वास्तविक कर्ता-धर्ता था। जयाजी राव सिन्धिया तो उसके हाथो की एक कठपुतली मात्र थे। यदि ग्वालियर मे भी उस समय विद्रोह की ध्वजा फहरा दी जाती, तो कदाचित अग्रेजो के पाव भारत से ही उखड जाते, अनेक अग्रेज इतिहासकारो ने भी इस तथ्य को स्वीकार किया है। 'मेमोरियल आफ सर्विस इन इण्डिया' का लेखक लिखता है—

"ग्वालियर को वास्तव मे एक प्रकार से भारत की कुञ्जी समझना चाहिए अथवा यह कहना चाहिए कि यह भारत की ऐसी कडी थी, जिसका कोई भी भाग टूट जाता तो भारत मे हमारा विनाश हुए बिना न रहता। ग्वालियर-नरेश यदि हमसे विश्वासघात करते या विद्रोहियो के वश मे हो जाते, तो वह विद्रोह केवल स्थानीय या सैनिक विद्रोह न रहकर, सर्वत्र होने वाला एक राष्ट्रीय विद्रोह हो जाता। उस समय हमे गगा नदी के सरलता से पार हो जाने वाले क्षेत्रो मे नही लडना पडता, अपितु उत्तरी भारत के दुर्गम प्रदेशो मे युद्ध कला मे पारगत जातियो से युद्ध करना पडता। यदि उस समय सिन्धिया हमारे विरुद्ध

विद्रोह का झण्डा खड़ा कर देते; यही नही यदि वह अपनी पूर्ण शक्ति से युद्ध करते हुए हार भी जाते, तो इस विद्रोह का रूप इतना भयकर हो जाता, जिसकी हम कल्पना भी नही कर सकते ।"

ग्वालियर मे तनातनी

दीवान दिनकर राव के प्रयत्नो से किसी प्रकार ग्वालियर मे विद्रोह टला हुआ था, फिर भी अन्दर ही अन्दर तनाव चल रहा था। तभी एक बार राजमहल के पास ऐसी तनातनी की स्थिति उत्पन्न हो गयी कि सिन्धिया और अग्रेज सरकार के कान खडे हो गये। समूचे उत्तरी भारत में 1857 के विद्रोह की ज्वाला भडक रही थी । मऊ और इन्दौर के विद्रोही सैनिक अपना प्रचार करने के लिए ग्वालियर पहुचे। उन्होने ग्वालियर की सेनाओ को भी विद्रोह के लिए प्रेरित किया । पेशवा नाना साहब के आदमी भी उन्हे अपने पक्ष मे करने का प्रयत्न कर ही रहे थे। इस सबका परिणाम यह हुआ कि ग्वालियर की सेना के विद्रोही सैनिको ने सिन्धिया से सीधे बात करना उचित समझा । उनके चुने हुए 300 प्रतिनिधि 7 सितम्बर 1857 को सिन्धिया के महल मे पहुचे तथा यह प्रस्ताव रखा— "हम आगरा पर आक्रमण कर गोरो का सफाया करना चाहते है । इस कार्य मे आप भी हमारी सहायता करें ।"

भला सिन्धिया को यह कहा स्वीकार होता। उन्होने इसके लिए अपनी स्पष्ट असहमति व्यक्त करते हुए कहा – "तुम्हारा यह व्यवहार हमारे आदेशो के विरुद्ध है । वर्षा ऋतु समाप्त होने तक यदि तुमने कुछ भी गडबडी की तो हमारी ओर से तुम्हे किसी प्रकार की सहायता नहीं मिलेगी, साथ ही तुम्हारा वेतन भी रोक दिया जाएगा ।"

सिन्धिया की अग्रेज-भक्ति विद्रोहियो के सामने भी नग्न रूप मे आ गयी, उन्हे ज्ञात हो गया कि सिन्धिया का अब तक कोई स्पष्ट उत्तर न देने का क्या कारण था । विद्रोहियो के प्रतिनिधि उन्हें खुली चेतावनी देकर लौट आये। फिर क्या था, वहा स्थित कंटिंजेंट सेना ने सिन्धिया के महल तथा शहर पर तोपो से धावा बोलने का निर्णय ले लिया । सिन्धिया के लिए भी स्थिति सकटापन्न हो गयी । समाचार मिलते ही उन्होने मराठों

की एक नयी सेना बनाने का निश्चय किया और 5000 मराठे भर्ती किये गये। सिन्धिया ने स्वय अपनी सेना का नेतृत्व किया और बडी कुशलता से शहर की रक्षा करने मे सफल हुए। विद्रोहियो ने भी सघर्ष न करने का निर्णय लिया और पीछे हट गए। इसका सबसे बडा लाभ आगरा के अग्रेजो को हुआ। वह सर्वनाश होने से बच गये। जयाजीराव के असहयोग से खिन्न होकर ग्वालियर की विद्रोही कंटिजेंट सेना तात्या टोपे के साथ कानपुर चली गयी।

ग्वालियर पर चढ़ाई

इस समय भले ही यह विपत्ति प्रत्यक्ष रूप मे टल गयी, परन्तु आग अन्दर-ही-अन्दर सुलगती रही, सिन्धिया भी इस घटना से भयभीत हो गये थे। चारो ओर विद्रोहो के बल पकडने से ग्वालियर मे भी अग्रेजो के प्रति घृणा की भावना ने जन्म ले लिया था। इस घटना के बाद कुछ मास बीते, तभी झासी और कालपी अग्रेजो की विजय के समाचारो मे ग्वालियर के प्राय सभी सरदार अग्रेजो के और भी विरुद्ध हो गए। तभी एक बार वीरश्रेष्ठ तात्या टोपे भी ग्वालियर पहुचे। वह भी सिन्धिया की सेना को विद्रोह की दीक्षा देने आये थे। उन्होने सेना से देश की स्वाधीनता के इस पावन क्रान्ति यज्ञ मे भाग लेने के लिए कहा। सभी ने तात्या टोपे को सहायता देने का वचन दिया।

कहने का आशय यही है कि उस समय ग्वालियर एक बारूद का ढेर बन चुका था, जिसे किसी कुशल व्यक्ति द्वारा एक चिनगारी दिखाने भर की देरी थी। अग्रेजो को भी भय हो गया था कि यदि ग्वालियर मे विद्रोह हो गया, तो इसका परिणाम उनके लिए अकल्पनीय रूप मे भयकर हो सकता है। ग्वालियर के अग्रेज रेजीडेण्ट ने ग्वालियर मे कुछ गोरो की सेना रखना समीचीन समझा और लार्ड केनिंग को इस विषय मे पत्र लिखा। इस समस्त घटना-चक्र से अग्रेज कितने भयभीत हो गये थे, इसका अनुमान इससे सरलता से लगाया जा सकता है कि गवर्नर जनरल ने इग्लैंड को तार भेज दिया था कि यदि सिन्धिया विद्रोह मे सम्मिलित होगे तो मुझे कल ही अपना बोरिया-बिस्तर बाधना पडेगा।"

लार्ड कैनिंग के कहने पर गवर्नर जनरल ने ग्वालियर मे गोरों की सेना भेजने के आदेश दे दिए। यह सेना ग्वालियर पहुच पाती, इससे पहले ही वहा सूचना मिली कि गोपालपुर से प्रस्थान कर राव साहब, लक्ष्मीबाई आदि की सेना ग्वालियर की सीमा पर पहुच चुकी है। वहा की जनता तथा दरबार के सरदार पहले ही विद्रोही वीरो के समर्थक बन चुके थे, अत राव साहब की सेना को वहा आने मे किसी विरोध का सामना नही करना पडा। यह सत्य है कि वह ग्वालियर के दुर्ग पर अधिकार करने आ रहे थे, किन्तु उन्होने अपना यह मन्तव्य खुले रूप मे प्रकट नही किया। उनके आगमन से जहा उनके समर्थक अत्यन्त प्रसन्न हुए, वही सिन्धिया, उनके दीवान दिनकर राव, तथा अन्य सभासद रघुनाथ राव राजवाडे आदि चिन्तित हो उठे। राजवाडे बाहरी रूप मे राव साहब के आगमन से प्रसन्न दिखाई दे रहा था, किन्तु उसकी भक्ति अग्रेजो के ही साथ थी। राव साहब जयाजी राव और राजमाता जायजाबाई को पत्र भी लिखा—"हम आपके पास स्नेह भाव से आ रहे है। आप हमारे पूर्व सम्बन्धो पर विचार करते हुए इस सकट के समय मे हमारी सहायता करे, तभी हम दक्षिण की ओर जा सकेगे।"

स्पष्ट है कि वह सिन्धिया को अपने पक्ष मे करना चाहते थे। राव साहब पेशवाओ के वशज थे और सिन्धिया वश को ग्वालियर का राज्य पेशवाओ से ही मिला था। कही सिन्धिया भी पेशवा के कहने मे न आ जाए, यहा विचार कर दिनकर राव ने उक्त पत्र उनके पास पहुचने ही नही दिया और इस सबकी सूचना रेजीडेण्ट को लिख भेजी। उधर जब राव साहब को सिन्धिया की ओर से कोई उत्तर न मिला, तो उन्होने अधिक प्रतीक्षा करना उचित न समझा और 28 मई 1858 के दिन आमन गाव के पास जा पहुचे। उन्हे पूरा विश्वास था कि पेशवाओ के साथ अपने पूर्व सम्बन्धो के कारण जयाजीराव इनकी अवश्य सहायता करेगे, किन्तु हुआ इसके सर्वथा विपरीत ही, वहा ग्वालियर की चार सौ पैदल और डेढ सौ घुडसवार सेना खडी थी, जिसने उनका मार्ग रोक लिया। इससे पेशवा राव साहब क्रोधित हो गये। उन्होने उस सेना के सूबेदार से कडकती आवाज मे कहा—'तुम हमे रोकने वाले कौन होते

हो। सिन्धिया तथा दिनकर राव को हम क्या समझते है। वे हैं क्या, जो हमे रोक लेंगे। हम रावपन्त प्रधान पेशवा हैं तथा स्वैराज और स्वधर्म के लिए युद्ध कर रहे है। सिन्धिया के पूर्वजो ने हमारी नौकरी की है और हमने ही इन्हे राज्य दिया है। उसे समस्त सेना हमसे ही मिली है। सेना के अधिकारियो के हमारे पास पत्र आए है। तात्या टोपे पहले ही ग्वालियर जाकर सबसे मिले है और उन्होने वहा के समस्त वृत्तान्त जान लिये है। अब सारी तैयारिया हो चुकी है, अत हम सेना लेकर आ रहे है। क्या तुम हमसे युद्ध करना चाहते हो ?'

पेशवा राव साहव के ओजपूर्ण शब्दो को सुनकर उस सूबेदार को कुछ कहने का साहस न हुआ और उनकी विशाल सेना को देखकर उसने सघर्ष के परिणाम का अनुमान लगा लिया, अत वह एक ओर हट गया और राव साहब सेना सहित आगे बढ गये। 30 मई को पेशवा की सेना बडा गाव पहुन्च गयी।

सिन्धिया की पराजय

पेशवा ने अपनी पूरी तैयारी के साथ मुरार छावनी मे पडाव डाल दिये और इसकी सूचना सिन्धिया के पास भेज दी अपना शुभचिन्तक समझकर कि वे हमारी सहायता के लिए तैयार रहे। लेकिन वहा काफी सूरवीर सहायता देने के पक्ष मे होते हुए भी साहस नहीं कर पाये। उन्ही के बीच मे कुछ गद्दार जैसे दिनकर राव तथा दो सरदार अपनी कूट-नीति और चतुरता से अचानक पेशवाजी की सेना पर टूट पडे। परिणाम-स्वरूप लक्ष्मीबाई की वीरता के सामने वे टिक न सके। युद्ध स्थल से उन्हे भागना पडा। पुन महारानी लक्ष्मीबाई ने उनकी सारी तोपे तथा लडाई की सारी सामग्री को अपने कब्जे मे ले लिया।

सिन्धिया का पलायन और ग्वालियर पर पेशवा का अधिकार

रणभूमि में पीठ दिखाकर भागने के बाद जयाजीराव सिन्धिया का ग्वालियर मे रहना निरापद नही था, अत वह अपने दीवान दिनकर राव तथा कुछ अन्य व्यक्तियो को साथ लेकर कही से धौलपुर होते हुए आगरा जा पहुचे। कहा तो विद्रोहियों का दमन कर अपने स्वामी अग्रेजो

को प्रसन्न करना चाहते थे, कहा महारानी लक्ष्मीबाई से अपने प्राण बचाकर उन्हें स्वयं भागना पडा । उनकी महारानी के समक्ष हुई पराजय के विषय मे श्री पारसनीस ने लिखा है—

"वास्तव मे सिंधिया सरकार ने उस समय अपनी राजभक्ति का बहुत अच्छा परिचय दिया और अपनी मित्रता का पालन करने के लिए उन्होने प्राणो की भी कुछ परवाह न करके प्राचीन सम्बन्धियो से युद्ध किया। यह बात जिस प्रकार उस समय उनके लिए गौरव की हुई, उसी प्रकार झासी की महारानी लक्ष्मीबाई ने अपने पराक्रम से स्वराज्य स्थापना करने की अभिलाषा से जो कीर्ति सम्पादन की, वह भी सदैव अटल रहेगी। यह कोई सामान्य बात नही है कि महाराज जयाजीराव सिंधिया को, जिनके शौर्य की बडे-बडे यूरोपियन लोगो ने तारीफ की है, जिनकी लडाई की तैयारी को देखकर शत्रु की छाती दहल उठती और जिनके रथी-महारथी शूर-सरदारो को देखकर विजयश्री स्वय वश मे हो जाती, महारानी ने किसी प्रकार की किसी विशेष सहायता न होने पर भी, केवल अपनी तलवार के जोर पर, सग्राम से भगा दिया।"

अब पेशवा पक्ष के लिए मैदान साफ हो चुका था, अत वे विजय के उल्लास मे शहर मे घुस पडे । इसके लिए उन्हे किसी प्रकार का सघर्ष नही करना पडा। उनके समर्थको को अपार प्रसन्नता हुई। ग्वालियर की विद्रोह समर्थक सेनाओ ने पेशवा का आधिपत्य सहर्ष स्वीकार कर लिया और उन्हे तोप ध्वनि से सलामी दी। राव साहब ने सिन्धिया के राजमहल को अपना निवास-स्थान बनाया, उस पर उनकी ध्वजा फहरा दी गयी। महारानी लक्ष्मीबाई ने नौलखा बाग के पास वाले महल को अपना आवास बनाया। इसी प्रकार अन्य सेनापति भी विभिन्न महलो मे रहने लगे। शहर को अपने अधिकार मे लेते ही वीर तात्या टोपे ने कुछ सैनिक किले पर अधिकार करने के लिए भेजे, जिनका किले मे स्थित लोगो ने खुले हृदय से स्वागत किया और किला उन्हे सौंप दिया। किले मे युद्ध सामग्री का विशाल भण्डार था। इस सब पर अधिकार हो जाने से विजेताओ को भारी प्रसन्नता हुई।

विजय की प्रसन्नता के बाद रेजीडेसी पर धावा बोलने का नम्बर

आया । उसे लूटने के बाद अग्नि देवता को भेंट कर दिया गया । इसके बाद सिन्धिया के पुराने महल तथा उसके अंग्रेज समर्थक सरदारो की हवेलिया भी लूटने के बाद मिट्टी मे मिला दी गयी । इसके बाद सैनिको ने शहर भी लूटने का विचार किया, जिसकी सूचना पेशवा राव साहब को मिल गयी । उन्होने कठोर आज्ञा निकाल दी कि कोई भी नगर को लूटने का दुष्कर्म न करे और किसी भी नगरवासी को न सताया जाए । इससे नगर लूट लिये जाने से बच गया ।

राव साहब का सिंहासनारोहण

जयाजीराव सिन्धिया ने अपने चार सरदारो को, जो स्वाधीनता के लिए विद्रोह के समर्थक थे, बन्दी बना लिया था । पेशवा ने उन्हे मुक्त कर दिया । ग्वालियर की शासन-सत्ता इस समय इन विद्रोही वीरो के हाथ मे आ गयी । पेशवा राव साहब उनके नेता थे । अत उन्होने (पेशवा) सत्ता का वास्तविक स्वामी बनने के लिए सिहासनारोहण का समारोह करना आवश्यक समझा । प्राचीन परम्परा के अनुसार जब तक किसी का राज्याभिषेक न हो, वह वैध राजा नही माना जाता था । छत्रपति महाराज शिवाजी के हाथ मे पूरी शासन-सत्ता होने पर भी जब तक उन्होने अपना राज्याभिषेक नही कराया, लोग उन्हे बीजापुर के शासन का एक विद्रोही सेवक ही मानते थे। उनके द्वारा राज्याभिषेक से पूर्व दिए गए दानपत्र आदि भी अवैध माने जाते थे। सम्भवत इसीलिए राव साहब ने अपना सिहासनारोहण सस्कार आवश्यक समझा हो । इसके लिए उन्होने पहले ग्वालियर रियासत के सभी सम्भ्रान्त लोगो, जागीरदारो, जमीदारो आदि मे परामर्श किया । उनकी सहमति मिल जाने पर पेशवा ने स्वय अपन सिहासनारूढ होने का दिन निश्चित किया । इसमे आने के लिए अपने सभी मित्रो को निमन्त्रण दिया ।

3 जून, 1858 को फूल बाग मे एक दरबार का आयोजन किया गया, जिसमे सभी दरबारी, सेनापति आदि अपने राजसी वस्त्र पहन कर सम्मिलित हुए । राव साहब ने अपनी परम्परागत पेशवाई परिधान धारण किया । फिर वह पूरे धार्मिक विधान से सिहासनारूढ हुए । श्री

पारसनीस ने इस घटना का वर्णन करते हुए लिखा है—"पेशवा के अनुकूल सब सरदार, राजनीतिज्ञ, सिलेदार आदि अपने-अपने योग्य स्थानो मे सुशोभित हुए। तात्या टोपे और उनके नीचे के सब फौजी अपनी-अपनी पोशाक पहन कर स ा मे हाजिर हुए। खुद राव साहब भी पेशवाई राजसी पोशाक पहनकर, मस्तक मे सिरपेच और कलगी लगाकर कानो मे मोतियो के चौकडे और गले मे हार पहनकर पूर्ण वैभव के साथ चोबदार और वन्दीगणो की मगल ध्वनि सुनते हुए दरबार मे पधारे। इसके बाद यथाविधि ताजीम और दरबारी लोगो के मुजरे से होकर पेशवा सिहासनारूढ हुए।"

इसके बाद सभी जागीरदारो, तात्या टोपे आदि को बहुमूल्य उपहार दिए। तात्या टोपे को सेनापति घोषित कर एक रत्न जडी हुई कृपाण भेट की गई। रामराव गोविन्द को उन्होने अपना प्रधान अमात्य (मत्री) बनाया, उसे बहुमूल्य वस्त्र दिए गए। इस दरबार मे उन्होने शिवाजी महाराज के अनुसार ही अष्ट प्रधानो की नियुक्ति की। सैनिको को पुरस्कार मे बीस लाख रुपये वितरित किए गए।

सत्ता का मद

अनायास प्राप्त इस सफलता से राव साहब, तात्या टोपे आदि अपने कर्तव्य से विमुख जैसे हो गए। उन्हे यह भी ध्यान न रहा कि इस प्रकार राज्य से वचित होने के बाद सिन्धिया शान्ति से नही बैठ जाएगे। सिहासनारोहण मे राज्य के जिन पुराने सेवको को कुछ नही मिला था, वे भी स्वय को अपमानित अनुभव कर रहे थे, किन्तु सत्ता के मद मे चूर्ण, रगरेलियो मे डूबे पेशवा और उनके सहयोगियो को इसकी परवाह कहा थी। उनके इस व्यवहार से महारानी लक्ष्मीबाई को अत्यन्त दु ख हुआ। अत वह पेशवा के पास गयी और बोली—"विजय के मद मे इस प्रकार डूब जाना आपको शोभा नही देता। यद्यपि सिन्धिया का कोष और उसकी सेना पर आपका अधिकार हो गया है, फिर भी यदि इसका समुचित उपयोग न किया गया, तो आपकी समस्त आशाओ पर पानी फिर जाएगा। अग्रेज बडे चतुर और उद्यमी हैं। वे कब हम पर

आक्रमण कर दें, इस विषय मे कुछ नही कहा जा सकता । यदि आप इसी प्रकार असावधान रहे, तो हमारा सर्वनाश होने मे विलम्ब नही लगेगा, अत आप ऐश्वर्य-भोग छोडकर सेना पर ध्यान दें । सैनिको का वेतन बढाकर उन्हें प्रोत्साहित करे। यह समय नष्ट करने के लिए नही है, बडी कठिनाइयो के बाद कार्य साधना का अनुकूल अवसर मिला है । अत आप पूरी सावधानी से युद्ध की तैयारी करने मे जुट जाइए ।"

महारानी के इन सारगर्भित शब्दो को पेशवा ने इस कान से सुना और उस कान से निकाल दिया । कदाचित् उन्हे यह विश्वास हो चला था कि अग्रेज उनका कुछ अहित नही कर सकते । सत्ता का मद सचमुच बडा विचित्र होता है । वह व्यक्ति के विवेक को आवृत कर देता है । इससे पार पाना कठिन है ।

ह्यूरोज का ग्वालियर के लिए प्रस्थान

महारानी का उपर्युक्त कथन जितना सत्य था, इसे समय ने शीघ्र सिद्ध कर दिखाया । ऊपर लिखा जा चुका है कि कालपी विजय के बाद ह्यूरोज अवकाश पर बम्बई जाना चाहता था, किन्तु पहली ही जून को राबर्टसन की ओर से उसे सूचना मिली कि विद्रोही ग्वालियर पर पहुच गए है । अत उसे तुरन्त वापस आने के लिए कहा गया था, क्योंकि पिछली विजयो को देखते हुए उसे ही ग्वालियर भेजना भी उचित समझा गया था । "उसने तुरन्त गवर्नर जनरल लार्ड केनिंग को तार द्वारा सूचित किया—"मैं ग्वालियर पर अधिकार करने के लिए सेना का नेतृत्व करने के लिए तैयार हू ।' केनिंग उसके इस उत्साह से बडा प्रसन्न हुआ । उसने उसे ही इस युद्ध का सेनापति बना दिया । उसके अवकाश लेने पर उसके स्थान पर जनरल नेपियर की नियुक्ति हुई । अब नेपियर को उसका सबसे बडा अधिकारी बना दिया गया ।

पुन सेनापति का पद भार लेते ही ह्यूरोज ने मेजर स्टुअर्ट को गोरो की तथा भारतीयो की घुडसवार और तोपखाने वाली सेना के साथ राबर्टसन की सहायता के लिए ग्वालियर की ओर चल पडने की आज्ञा दे दी । उसके द्वारा भेजी गई यह सेना ग्वालियर पहुचती, इससे

पहले ही 4 जून को यह समाचार भी मिल गया कि ग्वालियर पर पेशवा का अधिकार हो गया है तथा जयाजीराव सिन्धिया भागकर आगरा पहुच गए है। इस समाचार के मिलते ही ह्यूरोज हतप्रभ हो गया, एक बार तो उसे लगा कि उसकी सारी उपलब्धियो पर तुषारपात हो गया है। कहा तो विजयो की प्रसन्नता मे वह फूला न समा रहा था, कहा यह एक नयी विपत्ति आ खडी हुई। कहा वह अवकाश लेकर बम्बई जा रहा था, कहा फिर युद्ध-भूमि मे जाना पड गया। ह्यूरोज वास्तव मे एक धीर पुरुष था, विपत्तियो के आगे झुकना उसने नही सीखा था। इस समय वर्षा ऋतु आरम्भ हो गई थी, किन्तु ह्यूरोज ने इसकी कोई परवाह न की। उसके सामने अपना लक्ष्य सर्वप्रमुख था।

5 जून, 1858 के दिन ह्यूरोज ने ग्वालियर विजय के लिए अपनी नयी रणनीति बनाई। उसने अपनी सेना को अलग-अलग समूहो मे भिन्न-भिन्न मार्गो मे भेजना उचित समझा। ब्रिगेडियर स्मिथ को उसने राजपूताना फील्ड फोर्स की नयी सेना के साथ ग्वालियर के पूर्व मे पाच मील दूर कोटे की सराय की ओर का मोर्चा सम्भालने के लिए भेजा। मेजर आर के अधीन हैदराबाद कटिन्जेट सेना रखी गई। उन्हे ग्वालियर के दक्षिणी भाग मे नियुक्त किया गया। कर्नल रिडेल के साथ तोपखाना रखा और उसे आगरा-ग्वालियर मार्ग पर रहने के लिए कहा गया। जनरल नेपियर को मुरार की छावनी के पास नियुक्त किया गया। दूसरे दिन 6 जून को ह्यूरोज मध्य भारत को राजनीतिक अभिकर्ता राबर्ट हैमिल्टन और ग्वालियर के एजेन्ट मैकफर्सन को साथ लेकर स्वय भी कालपी की ओर से ग्वालियर को चल पडा। ये दोनो लोग ग्वालियर की भौगोलिक स्थिति तथा महत्त्वपूर्ण स्थानो से अच्छी तरह परिचित थे। मार्ग मे भी ह्यूरोज ने वहा के विषय मे इनसे पर्याप्त जानकारी प्राप्त की। इसीलिए वह इन्हे अपने साथ ले गया।

पेशवा की असावधानी

6 जून को ह्यूरोज ग्वालियर के लिए प्रस्थान कर चुका था। 11 जून को मार्ग मे इन्दुरकी गाव मे स्टुअर्ड भी सेना सहित उसे मिल

गया । फिर दोनो पहूज नदी पार कर दुर्गम पहाडी मार्ग को पार करते हुए 16 जून को ग्वालियर के पास बहादुरपुर गाव पहुच गए, जहा से हारकर जयाजीराव को आगरा भागना पडा था । वहा पहुचकर ह्यू रोज भावी युद्ध के लिए भूमि का सूक्ष्मता से निरीक्षण करने लगा । इस स्थान के सामने ही मुरार की छावनी पर इस समय पेशवा की सेना का अधिकार हो गया था । उन्होने छावनी के आगे, दाहिने तथा बाए क्रमश अश्वारोही सेना, तोपखाना और पैदल सना रखकर सुन्दर व्यूह रचना की थी । यह देखकर ह्यू रोज ने भी अपनी व्यूह रचना बना ली ।

मुरार की छावनी मे इस समय सिन्धिया की ही विद्रोही सेना थी, जो पेशवा के अधिकार मे हो गई थी । सिन्धिया की सभी सेनाए तथा युद्ध सामग्री पर भी इस समय पेशवा का ही अधिकार था । ग्वालियर कंटिजेंट सेना, रुहेलखण्ड के विद्रोही पठान आदि सब सेनाए ग्वालियर मे इधर-उधर अव्यवस्थित पडी हुई थी । इधर अग्रेजो की सेना मुरार छावनी के पास आ गई थी, ह्यू रोज गतिविधियो का निरीक्षण कर रहा था, किन्तु पेशवा को इस विषय मे कुछ भी ज्ञात न था । पेशवा और उनके सहयोगी अपने आप मे ही निमग्न थे । उनकी इस असावधानी का वर्णन करते हुए श्री पारसनीस ने लिखा है—"राव साहब पेशवा के पूर्वजो ने महाराष्ट्र राज्य की पताका भारत मे अधिकाश अपने वीर योद्धाओ के और तलवार के जोर से फहराई थी, पर राव साहब को उस समय इस बात का बिलकुल भी ध्यान नही था । वे समझते थे कि इस बार दान-पुण्य और ब्राह्मण भोजन के बल पर ही स्वराज्य स्थापित हो सकेगा । जब अग्रेजी सेना ने अच्छी तरह से अपना सब प्रबन्ध कर लिया, तब कही पेशवा साहब को इस बात की खबर लगी ।"

मुरार छावनी पर अग्रेजो का अधिकार

अग्रेजो के पहुचने की सूचना मिलते ही पेशवा राव साहब ने अपने सेनापति तात्या टोपे को सेना तैयार करने का आदेश दिया । तात्या टोपे भी इस समय नये पद के मद मे डूबे हुए थे । उन्होने समझ लिया था कि अब वास्तव मे पेशवा पद की पुन प्रतिष्ठा हो चुकी है, अत पेशवा काल के अतीत के समान ही सब उनकी सहायता के लिए दौडे

चले आएगे, किन्तु उनका यह भ्रम शीघ्र ही टूट गया। उनकी सहायता के लिए कोई नही आया। अत वह तुरन्त सेना के प्रस्थान की तैयारी करने लगे। सेना मुरार छावनी की ओर चल पडी। अग्रेज पहले ही सब तैयारी कर चुके थे। प्रतिपक्षी सेना के आते ही उन्होने बिना कोई अवसर दिए धावा बोल दिया और उन पर तोपो से गोले बरसाने लगे। अग्रेज पहले ही अपनी मोर्चाबन्दी कर चुके थे। तात्या टोपे के सैनिको को यह अवसर ही नही मिला, फिर भी उनके सैनिको ने कुछ देर वीरतापूर्वक युद्ध किया, उनके कई वीरो ने अपना रणकौशल दिखाया। इस पर अग्रेजो की ओर से ऐबट हैदराबाद कटिंजेट सेना लेकर आगे बढा और तात्या टोपे के सैनिको पर टूट पडा। तात्या टोपे के सैनिको ने हाइलैण्डर्स पल्टन के अनेक गोरे सैनिको को मार डाला। अग्रेजी सेना का एक अधिकारी लेफ्टीनेट नीव भी घायल हो गया। प्रतिपक्षियो को अपने पर भारी पडता देखकर बम्बई की पच्चीसवी नेटिव इन्फेंट्री का लेफ्टीनेट रोज आगे बढा। उसने युद्धभूमि मे अच्छा पराक्रम दिखाया। अन्तत पेशवा पक्ष पराजित हो गया और मुरार छावनी पर केवल दो घण्टो के सघर्ष के बाद अग्रेजो ने अधिकार कर लिया।

इस युद्ध मे महारानी लक्ष्मीबाई का कोई उल्लेख नही मिलता। सम्भवत उन्होने इसमे भाग नही लिया था। पेशवा राव साहब की योग्यता का इससे एक और प्रमाण मिल जाता है। वस्तुत इन सब तथ्यो को देखकर ऐसा लगता है कि उनमे कोई योग्यता नही थी। उन्हे विद्रोहियो का सेनापतित्व मिलने के पीछे उनकी एक ही योग्यता थी कि वह 1857 के स्वतन्त्रता समर के अप्रतिम महारथी पेशवा नाना साहब के भाई थे।

अग्रेजो की धूर्तता

इस युद्ध मे पेशवा की सेना मे कई विश्वासघाती और कायर लोग भी थे। पेशवा की इस सेना मे अधिकतर सैनिक जयाजी राव की ही सेना के थे। कहा जाता है, अग्रेजो ने ऐसे धर्मभीरु सैनिको को अपने पक्ष मे करने के लिए एक चाल चली। उन्होने जयाजी राव सिन्धिया

को आगरा से बुला लिया था और प्रचार कर दिया कि हम (अंग्रेज) सिन्धिया की ओर से युद्ध कर रहे है और पेशवा के शत्रुओ को ग्वालियर से मार भगाना चाहते है। उनकी यह युक्ति काम कर गई। अनेक धर्म भीरु सैनिको ने अपने स्वामी के विरुद्ध लड़ना पाप समझा और युद्ध से अलग हो गए। फलस्वरूप पेशवा के शेष सैनिको को अंग्रेजो ने शीघ्र ही पराजित कर दिया।

इस पराजय से राव साहब घबरा गए थे, जबकि बादा के नवाब और तात्या टोपे ने अधीरता नही दिखाई। तात्या टोपे तुरन्त पुन सेना का प्रबन्ध करने मे व्यस्त हो गए। उन्होने स्थान-स्थान पर तोपो से व्यूह रचना कर, सेनाओ को उचित स्थानो पर नियुक्त कर दिया।

महारानी द्वारा तात्या टोपे को कर्तव्य-बोध

मुरार छावनी पर हुए युद्ध मे महारानी लक्ष्मीबाई ने भाग नही लिया था। सम्भवत इसका कारण उनका पेशवा के प्रबन्ध से असहमत होना था। उपर्युक्त सैन्य तैयारी करने के बाद तात्या टोपे महारानी लक्ष्मीबाई से मिलने गए। उन्होने महारानी से विनम्र शब्दो मे सैन्य सचालन मे भाग लेने की प्रार्थना की। इस पर महारानी ने उनसे कहा—

"आज तक अनथक प्रयत्नो के बाद हमने जो परिश्रम किया, लगता है, वह सार्थक नही होगा। उचित समय पर हमने जो परामर्श दिया, वह विजय के मद मे डूबे पेशवा के दुराग्रह से व्यर्थ ही रहा। शत्रु सेना सिर पर आ गई है, फिर भी हमारी सेना की कोई व्यवस्था नही हुई। ऐसी स्थिति मे उनका सामना करके हमारी यश की आशा करना कल्पना भर है। फिर भी ऐसे समय मे धैर्य का परित्याग नही करना चाहिए। आप अपनी सेना को तैयार करें, अपने योग्य सामन्तो, सरदारो का सहयोग लें। आप अपना कर्तव्य देखें, मै अपना कर्तव्य पालन हेतु तत्पर हू।"

महारानी लक्ष्मीबाई के इन शब्दो से तात्या टोपे की मोह-निद्रा भग हो गई। उन्हे अपने कर्तव्यो का बोध हुआ। वस्तुत तात्या टोपे एक वीर सेनापति तो थे ही, किन्तु प्रथम बार सत्ता का सुख मिलने पर वह

कुछ काल के लिए अपना कर्तव्य विस्मृत कर बैठे थे, अपने स्वामी राव साहब की अयोग्यता के कारण ही वह भी प्रमाद मे आ गए थे। इसके बाद वह एक नये उत्साह के साथ सेना को उसके उचित स्थानो पर नियुक्त करने लगे। महारानी को ग्वालियर के पूर्वी भाग की रक्षा का भार सौंपा गया।

ग्वालियर पर आक्रमण

ब्रिग्रेडियर स्मिथ 14 जून, 1858 के दिन सेना सहित आतरी पहुचा जहा उसे मेजर आर भी मिल गया। फिर उन दोनो को ह्यू रोज का आदेश मिला कि वे ग्वालियर से पाच मील दूर कोटा की सराय पर अपनी सेनाए ले जाए और वही से ग्वालियर पर आक्रमण करें। युद्ध करने से पूर्व इन दोनो सैनिक अधिकारियो ने सूक्ष्मता से ग्वालियर की सेना और उसकी शक्ति का मनन किया। इधर से ग्वालियर की रक्षा का भार महारानी लक्ष्मीबाई के ऊपर था। यह क्षेत्र बडा ऊबड़-खाबड था। अग्रेजो की सेनाओ ने वहा व्यूह रचना कर ली।

उधर तात्या टोपे के जाने के बाद महारानी लक्ष्मीबाई ने एक पल भी व्यर्थ नही जाने दिया। इस बार पेशवा अपने योग्यता से परिचित हो गए थे, अत इस युद्ध के लिए सेना के प्रबन्ध का उत्तरदायित्व महारानी को ही दे दिया गया। महारानी ने अपना सैनिक बाना धारण किया, अपने चतुर घोडे पर सवार होकर तलवार म्यान से निकाल ली और अपनी सेना को युद्ध का पूर्वाभ्यास कराने लगी। उनके इस रूप का वर्णन श्री पारसनीस के शब्दो मे—

"उनका उस समय का भव्य स्वरूप, वह गम्भीर स्वर और कट्टर स्वाभिमान देखकर उनके सैनिको के अन्त करण वीरश्री से भर गए; और शत्रुओ पर एकदम धावा करके उन्हे नष्ट कर देने के लिए उन्हें आवेश चढ आया। उस समय महारानी लक्ष्मीबाई के समान प्रखर जाज्वल्यमान स्वरूप और सग्राम मे प्रतापाग्नि की धूमधारा के समान उनकी तलवार की चमक को देखकर सबका हृदय काप जाता रहा।"

अपनी सेना के अग्रभाग का नाम उन्होंने छबीना रखा था। उन्होंने

तोपो को उचित मोर्चो पर लगा दिया और अपने लाल वरदी वाले घुडसवार सैनिको को इधर-उधर कुछ-कुछ दूरी पर खडा कर दिया तथा पैदल सेना को भी मोर्चों पर लगा दिया। 17 जून 1858 को ब्रिगेडियर स्मिथ के बिगुल बजाते ही युद्ध आरम्भ हो गया। अग्रेज आगे बढे। इस पर महारानी ने अपनी तोपो को कार्य करने का आदेश दे दिया। युद्ध के आरम्भ मे ही ऐसा लगने लगा कि अग्रेजो के पाव उखड जाएगे, महारानी के मुसलमान सैनिक अग्रेजो पर हावी होने लगे और अग्रेजो की सेना महारानी की तोपो के लक्ष्य के अन्दर आ गयी थी। यह देख ब्रिगेडियर स्मिथ ने अपनी पूरी शक्ति महारानी की सेना के अग्रभाग पर लगा दी। इससे उसके लिए पर्याप्त स्थान मिल गया और उसने अपनी सेनाओ को आगे बढने का आदेश दिया। अग्रेजी घुडसवार सैनिक महारानी की व्यूह रचना तोडने के लिए आगे बढे। इस पर महारानी की सेना के अगले भाग से उनका भीषण सग्राम आरम्भ हो गया। दोनो पक्षो के वीर प्राणो को हथेली पर रखकर युद्ध करने लगे। युद्ध क्षेत्र मे तलवारो के टकराने, हताहतो की चीत्कारो, घोडो की टापो और हिनहिनाने से एक विचित्र दृश्य उत्पन्न हो गया। अनेक अग्रेजी सैनिको को अपने प्राणो से हाथ धोते देख कर्नल पेली ने 95वी पल्टन तथा 10वो नेटिव इन्फेंट्री को आगे बढकर प्रतिपक्षी सेना के बगल पर धावा बोलने का आदेश दे दिया। 95वी पल्टन के सैनिक पहले ही बहुत थक गये थे। जब उन पर महारानी की सेना चारो ओर से आक्रमण करने लगी, तो उन्हे पीछे हटना पडा।

उधर कर्नल रेक्स और ब्रिगेडियर स्मिथ महारानी की सेना के बीच से आगे बढने का प्रयत्न करने लगे। अग्रेजो की सेना महारानी की सेना से कई गुना अधिक थी। महारानी की सेना पर भारी दबाव पडने लगा। जब महारानी ने यह सब देखा तो वह हाथ मे तलवार चमकाती बिजली जैसी चपलता से अपनी सेना के आगे आ गयी और उनका उत्साह बढाने लगी। महारानी के इस व्यवहार को देख उनके सैनिको मे एक नवीन उत्साह का सचार हो गया, उन्होने प्राणो का मोह त्याग दिया और शत्रुओ पर टूट पडे।

अंग्रेजी सेना का एक अन्य भाग कोटे की सराय से लश्कर जाने वाले मार्ग से आक्रमण करने के लिए आगे बढने लगा। यह देख महारानी ने अपनी सेना को उसका सामना करने की आज्ञा दे दी। आज्ञा मिलते ही सैनिक उनके साथ उधर ही बढ चले। वहा भी घोर सग्राम छिड गया। सारे दिन भर यह युद्ध चलता रहा। महारानी के अद्‌भुत शौर्य और रण-कौशल से अंग्रेजो को वापस लौटना पडा।

यहा यह उल्लेख कर देना अप्रासगिक न होगा कि सिन्धिया के सैनिक, जो इस समय महारानी के साथ थे उन्होने, युद्ध मे कोई वीरता नही दिखाई। बाहरी रूप से तो उनका उत्साह देखते ही बनता था, किन्तु रणभूमि मे उनकी व्यवस्था नितान्त निम्नस्तरीय रहती थी।

महारानी का अन्तिम युद्ध

अंग्रेजो को युद्ध बन्द कर लौटना पडा था, अत दूसरे दिन 18 जून 1858 को वह निर्णायक युद्ध करने की भावना से रणभूमि मे उतरे। आज वह प्रतिपक्ष की सेना पर कई ओर से हमला करना चाहते थे। इस कार्य के लिए उनके साथ हुर्जास पलटन के घुडसवार सैनिक थे। युद्ध प्रारम्भ होने से पूर्व दोनो पक्षो ने अपनी-अपनी पैदल सेनाओ को बीहड मे छिपा दिया। आज अंग्रेज अपने विरोधियो को बचाव का कोई अवसर न देने की ठान कर आये थे। इस कार्य के लिए कर्नल हिक्स और कप्तान हेनेज को रणभूमि मे उतारा गया। सैनिको को युद्ध का पूर्वाभ्यास तथा आवश्यक निर्देश देकर अंग्रेजी सेना के ये अधिकारी आगे बढ चले।

अंग्रेज उन्हे पराजित करने के लिए एडी से चोटी तक की शक्ति लगा रहे थे, किन्तु महारानी भी महारानी ही थी, दोनो ओर का सघर्ष अपने पूरे वेग पर था, परन्तु कोई भी अपने प्रतिपक्षी को पराजित करने मे समर्थ नही हो रहा था। दूसरी ओर मुरार की ओर से ह्यू रोज ने धावा बोला। वहा उसका सामना पेशवा की सेना से हुआ। पेशवा के सैनिक शूर सिद्ध नही हुए, शत्रु ने उनके दो मोर्चे थोडी ही देर मे अपने अधिकार मे ले लिये। इसका समाचार मिलते

ही पेशवा राव साहब भयभीत हो गये, किन्तु महारानी ने अंग्रेजो को आगे नही बढने दिया। इस समय उनके कई सैनिक हताहत हो गये थे, तोपें आग उगल रही थी, फिर भी महारानी को इसकी कोई चिन्ता न थी। उन्होने अपने तोपखाने की भी आशा छोड दी। उनके पास इस समय केवल अपनी तलवार की ही शक्ति थी और वह उसी शक्ति से शत्रुओ को यमलोक पहुचा रही थी।

महारानी के प्रचण्ड पराक्रम मे कोई न्यूनता न आती देख दूसरी ओर से ब्रिगेडियर स्मिथ ने महारानी की पैदल सेना तथा तोपो को अपना लक्ष्य बनाया, इसमे अंग्रेजो को सफलता मिली, उन्होने महारानी की दो तोपो तथा कुछ अन्य युद्ध सामग्री पर अधिकार कर लिया। यह देख अंग्रेजो के प्रति आक्रोश से महारानी का उत्साह द्विगुणित हो उठा। उनके सामने केवल एक ही लक्ष्य रह गया था—शत्रु का सहार करो, इसके लिए अपने प्राणो का किन्चित मोह न करो।

अंग्रेजों के घेरे मे

महारानी अपना अपूर्व शौर्य दिखा रही थी, उनके तोपखाने पर शत्रु का अधिकार हो गया था, तभी ह्यू रोज ऊटो की सेना लेकर आ गया। इससे महारानी की सेना तितर-बितर हो गयी, उनका व्यूह बिखर गया। अंग्रेजो की सेना चारो ओर से आगे बढती चली आ रही थी, फिर भी महारानी के वीर अपने शौर्य का प्रदर्शन कर रहे थे। उधर पेशवा राव साहब का सैन्य सचालन पूर्णतया घातक सिद्ध हुआ। अंग्रेजो की तोपे उन पर बरसने लगी। पेशवा स्वय घबराये हुए थे, अत उनकी सेना मे साहस न रहा और वह भाग खडी हुई। राव साहब के इस निकम्मेपन के विषय मे श्री पारसनीस ने लिखा है—"उनकी सेना का प्रबन्ध किसी काम का न था, वे युद्ध विद्या जानते ही न थे। अंग्रेजो की भारी मार के सम्मुख वे न टिक सकते थे, फिर ऐसी फौज के बल पर कोई अपनी वीरता कैसे दिखा सकता है? अंग्रेज लोग युद्ध कला मे विशेष निपुण थे, उनकी बुद्धि, पालसी और कर्तव्य निश्चित होने के कारण सदैव उन्ही की जीत होती थी। पराक्रम से जो यश नही

मिलता था, उसे वे युक्ति से प्राप्त करते थे।"

चारो ओर से अंग्रेजो से घिरी हुई महारानी लक्ष्मीबाई युद्ध करती रही। दूसरे दिन 19 जून 1858 को भी यह युद्ध चलता रहा। महारानी पुरुष परिधान मे घोडे पर सवार होकर युद्ध कर रही थी। उनका शरीर धूलधूसरित हो गया था। इसी कारण उन्हे घेरे हुए ब्रिगेडियर स्मिथ, कप्तान हेनेज तथा उनके हुर्जास पलटन के सैनिक पहचान नही पा रहे थे। महारानी के साथ उनकी दो सेविकाए भी उसी वेशभूषा मे सदा उनके साथ रहती थी। सम्भवत इसीलिए महारानी को नही पहचान पाये। शत्रु सेना किसी प्रकार उन्हे पराजित कर ग्वालियर के राजमहल पर अधिकार करने पर तुली हुई थी।

घेरा तोडकर निकल भागना

19 जून के दिन इस प्रकार शत्रुओ से लडती हुई महारानी लक्ष्मीबाई अन्त मे उनकी सेनाओ से पूरी तरह घिर गयी। इस समय उनके साथ अपनी दो-तीन सेविकाए, दो परम विश्वासपात्र सेवक तथा कुछ घुडसवार ही रह गये थे। ऐसे मे संघर्ष का एक ही अर्थ था, मृत्यु या अंग्रेजो का बन्दी होना और उसका परिणाम भी मृत्यु ही था, फासी पर लटकना। महारानी की ओर की अन्य सेना तितर-बितर हो गयी थी या फिर अन्य स्थानो पर युद्ध कर रही था। ऐसी स्थिति मे महारानी इस घेरे से किसी तरह छूटकर अपनी अन्य सेना के साथ चली जाना चाहती थी। हुर्जास पलटन के सैनिक उनका यह आशय समझ गये, अत वे उनके हर प्रयत्न को विफल कर रहे थे। महारानी के लिए उस घेरे से निकलना अत्यन्त कठिन हो गया। अत वह प्राणो का मोह छोडकर पुन युद्ध करने लगी। अंग्रेज सैनिको की बन्दूके रुकने का नाम नही ले रही थी। महारानी की तलवार ने भी विश्राम न लेने का संकल्प ले लिया था। वह अनेको शत्रुओ के रक्त से स्नान कर प्रतिपल नवीन स्फूर्ति प्राप्त कर रही थी। तभी उन्हे एक पल का अवसर मिला, उन्होने अपने घोडे को एड लगायी और संकेत पाते ही घोडा बिजली के समान तीव्र वेग से निकल भागा। महारानी अंग्रेजो का

घेरा तोडकर वहा से निकल गयी। उन्हे भागती देख स्मिथ ने हुर्जास पल्टन के कुछ सैनिको को उनका पीछा करने का आदेश दे दिया।

यह युद्ध महारानी लक्ष्मीबाई के जीवन का अन्तिम युद्ध सिद्ध हुआ, इसी युद्ध मे उनकी गर्जना अन्तिम गर्जना थी, तथा उनकी तलवार अन्तिम बार शत्रुओ का रक्तपान कर तृप्त हुई थी।

वीर गति

महारानी के घेरे से निकल भागने पर अग्रेजो की हुर्जास पल्टन के गोरे बन्दूके चलाते हुए उनके पीछे भागे। महारानी बन्दूक की गोलियो से किसी प्रकार बचती-बचाती बढी चली जा रही थी, किन्तु दुर्भाग्य से उन्हे एक गोली जा लगी। इससे वह ढीली पड गयी। फलस्वरूप घोडा तीव्रता से नही दौड सकी। पीछा कर रहे सैनिको से उनका फिर युद्ध आरम्भ हो गया। अग्रेज सैनिक सख्या मे अधिक थे, फिर भी महारानी उन्हे मारती-काटती, आगे बढती चली जा रही थी।

सुन्दर और काशी नाम की दो सेविकाए तथा दो सेवक रामचन्द्र राव देशमुख और रघुनाथ सिंह महारानी के सच्चे स्वामिभक्त और परम विश्वासपात्र थे। महारानी के अग्रेजो के घेरे से निकलने पर ये भी साथ आ गये थे और घोडो पर बैठे हुए महारानी के पीछे-पीछे चल रहे थे। महारानी का दत्तक पुत्र सात-आठ वर्षीय दामोदर राव भी रामचन्द्र राव के साथ घोडे पर बैठा हुआ था। महारानी ने अपने इन सेवको से पहले ही कह दिया था कि यदि मै मारी जाऊ, तो मेरे मृत शरीर की ऐसी व्यवस्था करना कि फिरगी उसे स्पर्श न कर सकें। यदि तुमने मेरी यह इच्छा पूरी कर दी, तो तभी अपने आपको सच्चे स्वामिभक्त समझना। इन सभी विश्वासपात्र सेवको के साथ आगे बढती हुई महारानी हुर्जास पलटन के सैनिको से युद्ध करती जा रही थी और वे शत्रु भी पीछे से प्रहार करते जा रहे थे। इसी क्रम मे महारानी तलवार चलाती हुई घोडे को आगे बढा कर जा रही थी। सहसा उनके कानो मे अपनी एक सेविका की करुणा भरी चीत्कार पडी— "बाई साहब! मर गयी! मर गयी!!"

महारानी ने पीछे मुडकर देखा, उनकी एक सेविका को पीछा कर रहे अंग्रेज सैनिक ने गोली मार दी थी। अपनी सेविका का यह करुणा-जनक अन्त देख महारानी बिजली जैसी तेजी से उस अंग्रेज पर झपटी और तलवार के एक ही वार से उसका सिर काटकर धरती पर गिरा दिया। इसके बाद स्वय उसी क्षण घोडे को आगे दौडा दिया। घोडा गोली लगने से पहले ही घायल था, फिर भी किसी प्रकार आगे बढता जा रहा था, किन्तु तभी एक नाला आ गया। नाला देखकर घोडा रुक गया, स्वभावत उसने अपनी शक्ति का अनुमान लगा लिया था कि इसे पार करना अब उसके वश मे नही रह गया है। घोडे को रुकता देख महारानी सब कुछ समझ गयी, फिर भी उन्होने उसे छलाग लगाने के लिए प्रेरित किया, उत्साहित किया, किन्तु कोई परिणाम न निकला, घोडा भी विवश हो गया था और तीन दिन के युद्ध से महारानी स्वय भी थककर चूर हो गयी थी। पीछे से शत्रु सैनिक बढे चले आ रहे थे। उन्होने महारानी को जीवित पकडने का इसे अच्छा अवसर समझा और बिल्कुल समीप ही आ गए और महारानी पर एक साथ टूट पडे। महारानी फिर भी तलवार चलाती रही, वह घायल सिंघनी के समान अपनी तलवार से उन पर वज्र बनकर टूट रही थी। शत्रुओ ने उन्हे ऐसी दशा मे भी अपनी तलवार चलाती देखा, तो वे सभल गये। इस समय शत्रु भी तलवार से सामना करने लगे थे। दोनो ओर से घात-प्रतिघात होने लगे। तलवारो से तलवारे टकराने लगी। तभी एक सैनिक की तलवार महारानी के सिर मे लगी और उसके लगते ही अपनी तलवार के वार से उन्होने उस सैनिक का सिर पृथ्वी पर गिरा दिया तथा तत्क्षण स्वय भी गिर पडी। उस सैनिक के वार से महारानी का दाहिना माथा कट गया था और एक आख बाहर निकल गयी थी। उनके पृथ्वी मे गिर पडने पर एक दूसरे गोरे ने उन्हे सगीन भोक दी। अन्त निकट था, फिर भी वह पूरी तरह चेतन अवस्था मे थी। उन्होने सकेत से अपने सेवक रामचन्द्र राव देशमुख को अपने पास बुलाया।

रामचन्द्र राव ने अपनी स्वामिनी के पास आकर उनकी दशा देखी तो वह रो पडा। वह महारानी को उसी आहत अवस्था मे उठाकर

पास मे एक साधु गगादास की कुटी मे ले गया। महारानी प्यास से व्याकुल हो रही थी। वहा उन्हे पानी पिलाया गया और गगाजल भी दिया गया। उनका समूचा शरीर रक्त से लथपथ हो गया था। उन्हे असह्य वेदना हो रही थी, फिर भी उनके मुख पर एक अलौकिक तेज था। इसके बाद उन्होने एक बार अपने दत्तक पुत्र दामोदर राव को देखा और फिर सदा-सर्वदा के लिए आखे बन्द कर ली। उस दिन सवत 1915 की ज्येष्ठ मास की शुक्ल पक्ष की सप्तमी थी। महारानी की मृत्यु रात बारह बजे के बाद हुई होगी, इसीलिए अग्रेजी मास के अनुसार कही 19 जून लिखा है और कही 20 जून, 1858।

इसके बाद रामचन्द्र राव ने अपनी मृत स्वामिनी की अन्तिम इच्छा का सम्मान करते हुए पास मे ही उनकी अन्त्येष्टि कर दी, जिसकी सूचना अग्रेजो को कभी नही मिल सकी। इस प्रकार एक वीर रमणी, वीरागना, जो इतिहास का एक प्रेरक अध्याय थी, अपनी ज्योति दिखा-कर अदृश्य हो गई।

महारानी की मृत्यु के सम्बन्ध में विभिन्न मत

महारानी लक्ष्मीबाई की मृत्यु का उपर्युक्त वर्णन वीर विनायक दामोदर सावरकर की अमर कृति '1857 का स्वतन्त्रता युद्ध' और श्री दत्तात्रेय बलवन्त पारसनीस की पुस्तक 'झासी की रानी लक्ष्मीबाई' के आधार पर है, श्री पारसनीस के अनुसार इसका आधार महारानी के सेवक रामचन्द्र राव देशमुख द्वारा दिया गया विवरण है, किन्तु उनकी मृत्यु के सम्बन्ध मे इतिहासकारो मे मतभेद है। यहा कुछ मतो की चर्चा की जा रही है। 'डलहौजीस एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ ब्रिटिश इण्डिया' मे यह उल्लेख मिलता है कि जब महारानी लक्ष्मीबाई अग्रेजो का घेरा तोडकर निकल भागी तो अग्रेज घुडसवार सैनिको ने उनका पीछा किया। उन सैनिको ने उनके गले मे पडी मोतियो की माला देख ली, जिससे वे लालच मे पडकर महारानी की हत्या कर दिये।

मैकफर्सन ने 'उनकी मृत्यु घायल होने पर' घोडे से गिरने पर हुई, लिखा है—"झासी की रानी अपने डेरे मे बैठकर शरबत पी रही थी।

उस समय उनके साथ चार सौ सैनिक भी थे। जब उन्हे सूचना मिली कि अग्रेज आ गये है, तो वे वहा से भागने लगे। महारानी का घोडा नाला पार नही कर सका। उसी समय उनके शरीर मे एक गोली लगी और सिर मे तलवार का घाव भी लगा, किन्तु वह उसी दशा मे चली गयी। अन्त मे घोडे से गिरकर उनकी मृत्यु हो गयी।"

मार्टिन का मानना है कि किसी भी अग्रेज ने महारानी को मरते हुए नही देखा और न ही किसी अग्रेज को उनकी अन्त्येष्टि की सूचना मिली—"किसी अग्रेज ने उन्हें मरते हुए नही देखा। अग्रेज घुडसवार यह भी नही जानते थे कि वे किसका पीछा कर रहे हैं। वे तेज धूप और थकान के कारण अधिक देर तक घोडे पर बैठ भी नही सकते थे। अत वे अधिक परिश्रम न कर वापस आ गये। इस पर रानी के विश्वासपात्र सेवको ने उनके और उनकी बहिन की मृत देहो को चिता मे जला दिया। उनकी बहिन भी पुरुष वेश मे उनके साथ युद्ध कर रही थी और उन्ही के साथ गोली लगने से मृत्यु को प्राप्त हो गई।"

यहा महारानी की सेविका को भ्रम से मार्टिन ने उनकी बहिन मान लिया है, जबकि महारानी के कोई बहिन नही थी।

महान विभूतियो के जीवन के विषय मे कई प्रकार की किंवदन्तिया भी प्रचलित हो जाती है। इसी प्रकार महारानी लक्ष्मीबाई की मृत्यु भी किवदन्तियो का विषय बन गयी, किसी ने लिखा है कि जब महारानी ने देखा कि उनका अन्त नही हो रहा है, तो वह किसी घास के ढेर मे कूद गयी और सुतली के तोडे से उसे जलाकर उसमे जल मरी।

यह भी कहा जाता है कि उनकी अन्त्येष्टि का प्रबन्ध पेशवा राव साहब ने किया, किन्तु रामचन्द्र राव ने इस मत का खण्डन किया था।

किसी लेखक ने महारानी की तुलना फ्रान्स की महान वीरागना जोन ऑफ आर्क से करते हुए लिखा है—"वह भारतीय जोन ऑफ आर्क लाल जाकेट और सिर पर सफेद रेशमी पगडी बाघे हुए थी। उसके गले मे ग्वालियर राज्य का प्रसिद्ध मुक्ताहार पडा था, जो उसने ग्वालियर राजकोष से प्राप्त किया था। जब वह घायल होकर मृत्यु शैया पर पडी थी, तो उसने यह आज्ञा दी कि उसके सारे आभूषण उसके साथी सैनिको मे बाट दिए जाए।"

अध्याय : 8

पूरक प्रसंग

महारानी लक्ष्मीबाई के अशेष जीवन चरित का वर्णन ही इस पुस्तक का मुख्य विषय है, किन्तु यदि उनके अवसान के साथ ही इस पुस्तक को समाप्त कर दिया जाए, तो उनके उस युद्ध तथा उनके दत्तक पुत्र दामोदर राव के विषय में सामान्य पाठकों की जिज्ञासा बनी रह जाएगी, अतः इस अध्याय में महारानी की जीवन कथा के इन्हीं पूरक प्रसंगों पर अति संक्षिप्त प्रकाश डाला जा रहा है।

जयाजीराव सिन्धिया का पुनः राज्यारोहण

महारानी की मृत्यु के बाद राव साहब पूरी तरह हतोत्साहित हो गये। सिन्धिया के जिन सैनिकों ने उनका आधिपत्य स्वीकार कर लिया था, पाशा पलटते देख वे पुनः सिन्धिया के समर्थक बन गये। फलतः राव साहब, तात्या टोपे तथा बांदा के नवाब आदि की पराजय हो गयी। ग्वालियर पर अंग्रेजों ने अधिकार कर लिया। जयाजीराव ने अंग्रेजों की विपत्ति के समय में रक्षा की थी और बाद में भी उनके प्रति अपनी स्वामिभक्ति का अच्छा परिचय दिया था। अतः गवर्नर जनरल लार्ड केनिंग ने उन्हें पुनः राज्यारोहण की अनुमति दे दी।

16 जुलाई 1858 को जयाजीराव सिन्धिया पुनः अपने सिंहासन पर आरूढ़ हुए। उस दिन एक विशेष दरबार सजाया गया। अंग्रेजी सरकार द्वारा उन्हें 'राजाधिराज' की उपाधि से विभूषित किया गया। पूरे ग्वालियर में, विशेषकर ग्वालियर की छावनी — लश्कर में दीपावली सजायी गयी। जयाजीराव ने अपने मित्र अंग्रेजों को भोज पर आमन्त्रित किया। अंग्रेजों के प्रति भक्ति भावना के कारण सिन्धिया स्वतन्त्रता प्रेमी वीरों को पराजित कर पुनः 'राज्याधिराज' बन गये।

राव साहब

महारानी लक्ष्मीबाई के महाप्रयाण के बाद कुछ दिन तक पेशवा राव साहब, तात्या टोपे तथा बांदा के नवाब अंग्रेजों से टक्कर लेते

रहे। जावरा, अलीपुर मे भारी पराजय के बाद इन तीनो को एक अनिश्चित भविष्य के मार्ग का पथिक बनना पडा। बादा के नवाब तो कुछ दिनो बाद साथ छोड गए, किन्तु शेष दोनो टिमटिमाती हुई क्रान्ति की ज्वाला को लिये हुए इधर-उधर फिरते रहे।

ग्वालियर राज्यो का कुछ दिनो का राज्य सुख भोगने के बाद पेशवा राव साहब का यह सघर्ष अधिक दिनो नही चल सका। पराजय के बाद पकडे जाने पर फासी निश्चित थी और सघर्ष के लिए साधनो का अभाव था, कहा जाता है कि तात्या टोपे के पकडे जाने के बाद वह सन्यासी बनकर पजाब के वनो मे इधर-उधर विचरण करने लगे। इसी प्रकार उन्होने कुछ समय व्यतीत किया, किन्तु दुर्भाग्य को उनका ऐसा करना भी स्वीकार नही था, सन् 1862 मे वह पकड लिये गए, फिर बन्दी बनाने के बाद उन्हे कानपुर के पास उनके गृह नगर बिठूर ले आकर 30 अगस्त सन् 1862 को उन्हे फासी दे दी गयी।

तात्या टोपे

तात्या टोपे सच्चे अर्थो मे वीर थे। बादा के नवाब अग्रेजो की शरण मे चले गए थे और राव साहब भी उदासीन जैसे हो गए थे—किन्तु तात्या टोपे ने न तो अग्रेजो के समक्ष आत्म-समर्पण किया, न महारानी विक्टोरिया की क्षमा प्रदान की घोषणा का ही लाभ उठाया, अपितु जितना भी उनसे हो सकता था, अकेले सघर्ष करते रहे। वह अग्रेजो के लिए एक चुनौती बन गए थे। अग्रेज उनसे किस तरह भयभीत हो गए थे इसका परिचय 185८ के लन्दन के समाचार पत्रो मे प्रकाशित लेखो से अच्छी तरह मिल जाता है।

ग्वालियर मे अग्रेजो से पराजित हो जाने के बाद वीर तात्या टोपे नर्मदा पार कर महाराष्ट्र जाना चाहते थे, जिससे वह महाराष्ट्र के वीरो को सगठित कर पुन अग्रेजो से युद्ध कर सके। अग्रेज उनके पीछे पडे थे। अत उन्हें धोखा देने के लिए तात्या टोपे सीधे मार्ग से न जाकर भरतपुर की ओर चल पडे। ह्यूरोज इस तथ्य से अच्छी तरह अवगत हो चुका था कि महारानी लक्ष्मीबाई की मृत्यु के बाद तात्या टोपे ही वह व्यक्ति है, जो अग्रेजो के लिए विपत्ति का कारण बन सकता है।

अत उसने सभी सन्दिग्ध स्थानो पर अपने गुप्तचरो का जाल बिछा दिया था। जब तात्या टोपे भरतपुर के मार्ग से आगे बढ रहे थे, तो उन्हे सन्देह हो गया कि अग्रेजो के थाली-चाट भक्त उनकी गतिविधियो का निरीक्षण कर रहे हैं। अत वह तुरन्त जयपुर चले गए। वहा भी उन्हें ऐसा ही सन्देह हुआ, तो वह टोक रियासत की ओर चल पडे, किन्तु टोक के राजा को उनके आने की सूचना पहले ही मिल गई थी, अत उसने अपने राज्य मे प्रवेश न करने के लिए सेना भेज रखी थी।

अब तक उनके पास कुछ सेना भी हो गई थी। वहा से वह बूदी राज्य की ओर बढे, किन्तु वहा कप्तान राबर्टसन पहले ही उनकी प्रतीक्षा कर रहा था। अत तात्या टोपे उदयपुर की ओर बढे। वहा भी अग्रेजी सेना से सामना हो गया। वहा उन्हे अपनी तोपो से भी हाथ धोने पडे। इसके बाद वह चम्बल की ओर बढ चले। चम्बल पार अग्रेजो ने छावनी डाली थी, अत उस पार न जाकर वह झालरा पाटन रियासत की ओर बढ चले। वहा का राजा भी सामना करने आया किन्तु उसकी सेना विद्रोह पर उतर आई, अत उसे तात्या टोपे के सामने झुकना पडा। यही नही उसे उन्हे पन्द्रह लाख रुपये भी देने पडे। पाच दिन उसी राज्य के अतिथि रहने के बाद वह इन्दौर की ओर चले गए।

इस प्रकार वह एक से दूसरे स्थान पर भटकते रहे, किन्तु अग्रेजो के कई सेनापति उन्हे पकडने का सकल्प करने पर भी विफल मनोरथ रहे। डेढ वर्ष तक इसी तरह आख-मिचौली चलती रही। तात्या टोपे को विश्वास हो गया था कि अग्रेज उन्हे महाराष्ट्र नही जाने देंगे। अत वह उत्तरी भारत की ओर मुड गए। जब अग्रेजो को यह सूचना मिली तो उन्होने भी दक्षिण छोड उत्तर मे अपनी व्यूह रचना आरम्भ कर दी। अवसर का लाभ उठाते हुए तात्या टोपे बेतवा पार कर दक्षिण की ओर चल पडे। वहा उनका सामना कप्तान सदरलैण्ड से होने पर वह बेतवा मे कूद पडे थे। फिर वह छोटा उदयपुर पहुचे। वहा से बडौदा की ओर बढ़े, किन्तु मार्ग भटक जाने से 'पार्क उदयपुर' पहुच गए। वहा बादा के नवाब ने उनका साथ छोड दिया। तात्या टोपे राव साहब के साथ उदयपुर के पास पहुचे, तो वहा अग्रेजी सेना से फिर टक्कर हो

गयी। अंग्रेजो की आखो मे धूल झोकते हुए वहा से वह बासवाडे के जगल मे पहुचे, जहा उन्हे ग्वालियर का विद्रोही सरदार मानसिंह और मुगलवशीय शाहजादा फिरोजशाह भी मिल गए।

मानसिंह का मिलना इस वीर के लिए शुभ नही रहा। उसी के विश्वासघात से 4 अप्रैल 1859 को वह रात्रि मे सोये हुए अंग्रेजो द्वारा बन्दी बना लिये गए। इसके बाद 18 अप्रैल 1859 को सीपरी मे उन्हें फासी दे दी गयी। उनकी मृत्यु भारत के प्रथम स्वतन्त्रता सग्राम के अन्तिम सेनापति की मृत्यु थी, इतिहास के एक स्वर्णिम अध्याय का समापन था।

बादा का नवाब

बादा के नवाब पेशवा बाजीराव प्रथम के ही वशज थे, इसकी चर्चा इस पुस्तक के द्वितीय अध्याय मे की जा चुकी है। कदाचित् एक ही वश का होने के कारण तत्कालीन बादा के नवाब ने 1857 के स्वतन्त्रता सग्राम मे पेशवा नाना साहब का साथ दिया हो। वह नाना साहब के नेपाल चले जाने पर भी उनके भाई राव साहब के साथ बने रहे, किन्तु किसी भी युद्ध मे उनके किसी विशेष कार्य का उल्लेख नही मिलता। ग्वालियर की पराजय के बाद वह तात्या टोपे और राव साहब के साथ चले गये। अंग्रेजो द्वारा प्रथम स्वाधीनता सग्राम को विफल कर दिये जाने के बाद नवम्बर, 1858 मे इंग्लैड की महारानी विक्टोरिया ने सभी विद्रोहियो को क्षमा देने की घोषणा कर दी थी। इस समय बादा के नवाब तात्या टोपे के साथ ही थे। वह सतत सघर्ष से निराश हो गए थे। जब उन्होने विक्टोरिया की घोषणा के विषय मे सुना, तो वह 'उदयपुर पार्क' से तात्या टोपे को छोडकर अंग्रेजो की शरण मे चले गए। फलत उन्हें माफी मिल गयी और चार हजार रुपये वार्षिक पेंशन भी मिलती रही।

दामोदर राव

महारानी के देहावसान के समय उनके दत्तक पुत्र दामोदर राव प्राय सात-आठ वर्ष के बालक थे। इस अवस्था मे मा की मृत्यु के बाद वह अनाथप्राय हो गए थे। तब अपने स्वामिधर्म का पालन करते हुए

रामचन्द्र राव देशमुख और काशीबाई ही उनके सरक्षक बने। बालक दामोदर राव को लेकर उन दोनो ने पेशवा राव साहब, तात्या टोपे आदि को ढूढने का प्रयास किया, किन्तु सफलता नही मिली। फिर भी वे दामोदर राव को छिपाते हुए इधर-उधर अपने साथ ले जाते रहे। कहा जाता है, ग्वालियर से चलते समय उनके पास लगभग 75 हजार रुपये थे। बालक की गोपनीयता बनाये रखने के लिए कई लोगो का मुह बन्द करना पडा, जिससे उनकी यह धनराशि समाप्त हो गयी।

ऐसी विपन्न अवस्था मे दोनो सरक्षक कई स्थानो पर भटकने के बाद बालक दामोदर राव को लेकर अन्त मे आगरा पहुचे। वहा वह एक अग्रेज अधिकारी प्लीक के सम्पर्क मे आये। धीरे-धीरे प्लीक से उनकी घनिष्ठता बढ गयी। प्लीक, महारानी लक्ष्मीबाई की वीरता से अत्यन्त प्रभावित और उनके प्रशसक थे। उन्हे विश्वस्त जानकर काशी बाई तथा रामचन्द्र राव ने उन्हे बालक दामोदर राव का सच्चा परिचय दे दिया। दयामूर्ति प्लीक सच्चे मित्र सिद्ध हुए। उन्होने इन्दौर के राजनीतिक अधिकर्ता (पोलिटिकल एजेण्ट) शेक्सपियर के माध्यम से रामचन्द्र राव देशमुख, काशी बाई तथा दामोदर राव को सरकार से क्षमा करा दिया और इन्ही दो महानुभावो के प्रयत्नो के परिणाम-स्वरूप गवर्नर जनरल ने दामोदर राव को अठारह सौ रुपये वार्षिक की पेंशन देना भी स्वीकार कर लिया।

शेक्सपियर भी दया मूर्ति निकले। उन्होने दामोदर को उनके सरक्षको सहित अपने पास बुला लिया। यही नही, उन्होने दामोदर राव की शिक्षा के लिए मुन्शी धर्म नारायण को भी नियुक्त कर दिया, जो उन्हे हिन्दी, उर्दू, मराठी, अग्रेजी आदि पढाने लगे। दामोदर राव के नाम से अग्रेजी कोष मे जमा छह लाख रुपये उन्हे नही मिल सके।

दामोदर राव की चाची ने, जो उनके जन्मदाता पिता के भाई की पत्नी थी, उनका विवाह कराया। इस पत्नी की मृत्यु के बाद उनका दूसरा विवाह शिवडे परिवार से हुआ। सन् 1904 मे दामोदर राव एक पुत्र के पिता बने, जिसका नाम लक्ष्मण राव रखा गया। इसके बाद उनके वशज इन्दौर मे ही रहने लगे।